शकुन्तला नाटक

अनुवादक

राजा लक्ष्मणसिंह

शकुन्तला नाटक

[कालिदास कृत अभिज्ञान शकुन्तला नाटक का हिन्दी अनुवाद]

अनुवादक

राजा लक्ष्मणसिंह
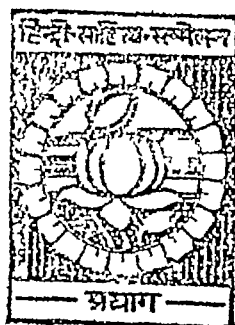
२००४

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

तृतीय संस्करण २०००

मूल्य १।।।)

मुद्रक—यूनियन प्रेस, प्रयाग।

प्रकाशकीय वक्तव्य

श्रीमान् बड़ौदा नरेश स्वर्गीय सर सयाजीराव गायकवाड महोदय ने बम्बई सम्मेलन में उपस्थित होकर पाँच सहस्र रुपये की सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी। उस सहायता से सम्मेलन ने 'सुलभ-साहित्य-माला' संचालित कर कई सुन्दर पुस्तकों का प्रकाशन किया है।

प्रस्तुत पुस्तक भी उसी ग्रंथमाला के अंतर्गत प्रकाशित हो रही है।

साहित्य-मंत्री

नाटक के आरम्भ में एक ब्राह्मण रङ्गभूमि में आकर सभा को अशीर्वाद देता है इसको नान्दी कहते हैं फिर नाटक खेलनेवालों का मुखिया जो सूत्रधार कहलाता है सभा के सामने कुछ बातचीत करके कहता है कि आज अमुक नाटक का खेल किया जायगा और खेलनेवालों को जताता है कि सावधानी से खेलो, तिस पीछे कुछ गान आप करता है, कुछ किसी और पात्र से कराता है, इस बातचीत को प्रस्तावना कहते है।

जैसे साधारण ग्रंथों के भाग काण्ड वा अध्याय वा पर्व वा सर्ग इत्यादि कहे जाते हैं, नाटक के भागों को अङ्क कहते हैं और जो कोई अधिक प्रसङ्ग किसी अङ्क के आदि में आता है विष्कम्भ अथवा प्रवेशक अथवा गर्भाङ्क कहलाता है।

नाटक पढने अथवा देखनेवालों की सुगमता के निमित्त और नाटक करनेवालों की शिक्षा के लिये नाटक के ग्रंथों में कुछ चिह्न ऐसे लिखे जाते है जो साधारण ग्रंथो मे नहीं होते वे चिह्न ये है—

१—जिस जगह नाटक खेला जाता है, रङ्गभूमि कहाती है और परदों के भीतर जिस जगह खेलनेवाले भेस पलटते है अथवा खेल कर चले है उसका नाम नेपथ्य है।

२ जो खेल इस प्रकार ( ) के कोष्ठ में आता है वह किसी नाटकपात्र का वचन नहीं, किन्तु पढनेवालो अथवा खेलनेवालो के समझाने के लिये है।

३—जहा कोष्ठ के भीतर "आप ही आप" लिखा है वहा समझना चाहिये कि इसमे आगे का वचन प्रगट नहीं कहा गया, हौले हौले ऐसे कहा गया है मानो कोई नहीं सुनता और जहा कोष्ट मे "प्रगट" लिखा है वहा जानो कि आगे कथन सबके सुनने के लिये है।

४—जहा लिखा है कि अमुक आता है अथवा जाता है, इसमे जानना चाहिये कि यह पात्र नेपथ्य से रङ्गभूमि में आया अथवा रङ्गभूमि से नेपथ्य में गया।

[ग्रन्थकार द्वारा]

शकुन्तला नाटक

पात्र

ष्यन्त—हस्तिनापुर का पुरुवंशी राजा।

ाढव्य—दुष्यन्त का सखा और विदूषक।

न्व—तपोवन के ऋषियों का मुखिया और शकुन्तला का मुँह-
बोला बाप।

ारंगरव } कन्व के चेले
ारद्वत }

त्रावसु—दुष्यन्त का साला और हस्तिनापुर का कोतवाल।

म्भिलक—शुक्रावतार तीर्थ का धीमर अर्थात् मछुवा।

ानुक } प्यादे
चक }

तायन—रनवास का रखवाला।

ामरात—राजा का पुरोहित।

रभक—दूत।

ातक—द्वारपाल।

ातलि—इन्द्र का सारथी।

र्वदमन—दुष्यन्त का बेटा शकुन्तला से। इसी का नाम भरत
हुआ जिससे हिन्दुस्थान भारतवर्ष और भरतखण्ड
कहलाता है।

कश्यप—एक प्रजापति जो मरीचि का बेटा और ब्रह्मा का पोता और देव-दानवों का पिता था।

गालव—कश्यप का चेला।

शकुन्तला—विश्वामित्र की बेटी मेनका अप्सरा के गर्भ से और कन्व मुनि की मुँहबोली पुत्री।

प्रियम्वदा, अनसूया } शकुन्तला की सहेली।

गौतमी—एक बूढी तपस्विनी।

वसुमती—दुष्यन्त की रानी।

सानुमती—एक अप्सरा और शकुन्तला की सखी।

तरलिका—वसुमती की दासी।

चतुरिका—एक दासी जो राजा के निकट रहती थी।

वेत्रवती, प्रतीहारी } रनवास की द्वारपालनी

परभृतिका, मधुरिका } उद्यान रखाने वाली दो युवतियाँ।

सुव्रता—सर्वदमन को खिलाने वाली।

अदिती—कश्यप मुनि की स्त्री, दक्ष की बेटी और ब्रह्मा की पोती।

राजा का साथी वा ढाडी वा तपस्विनी वा यवनी।

—०:—

शकुन्तला नाटक

प्रस्तावना

[रङ्गभूमि में ब्राह्मण आशीर्वाद देता हुआ आता है ।]

छप्पय

आदि सृष्टि इक नाम इक बिधिहुतबाहन ।
बहुरि नाम यजमान योति द्वै काल बतावन ॥
एक सर्वव्यापीक श्रवन गुन जात पुकारा ।
भूत प्रकृति फिर एक जनित अग-जग संसारा ॥
गनिये जु जीव आधार पुनि अष्टममूर्ति इनतें कहत ।
शङ्कर सहाय तुम्हारी करें नितप्रति तिनही में रहत ॥१॥

सूत्रधार आता है ।

१—जिसको कर्त्ता ने सृष्टि की आदि में रचा अर्थात् जल, और विधिपूर्वक दिये हव्य को लेता है अर्थात् अग्नि, और जो यज्ञ करता होत्री, और दोनों ज्योति जिनसे समय विधान होता है अर्थात् सूर्य्य और वह विश्वव्यापी जिसका गुण शब्द है अर्थात् आकाश, वह जिसकी प्रकृति बीज की वृद्ध है अर्थात् पृथ्वी, और वह जो का आधार है अर्थात् पवन, इन आठ मूर्तियों में जो ईश प्रत्यक्ष है महादेवजी, सोई तुम्हारी रक्षा करें ।

सूत्रधार (नेपथ्य की ओर देखकर)—अजी सिंगार कर चुकी हो तौ आओ।

नटी आती है

नटी—हाँ जी मैं आई, कहो कौन सी लीला करें।

सूत्रधार—यह सभा हमारे यशस्वी राजा विक्रमाजीत की है, बड़े-बडे चतुर पण्डित इसमे विराजमान हैं, आज हमको कालिदास के बनाये अभिज्ञान-शकुन्तला नामक नये नाटक की लीला करनी है इससे सब कोई सावधान होकर खेलो।

नटी—तुम्हारा तौ प्रबन्ध ही ऐसा अच्छा है कि किसी बात मे न्यूनता न होगी।

सूत्रधार—(मुसकाकर)—हे चातुरी अपना सिद्धान्त तौ वह है—

दोहा

नाटक को करतब भलौ रीझै सुजन समाज।
नातर सीखेहू घने दुचित रहत इहि काज ॥२॥

नटी—(नम्रता से)—सच है, अब क्या आज्ञा होती है।

सूत्रधार—इस्से उत्तम और क्या है कि सभा के आनन्द निमित्त कुछ गान करो।

नट—कौनसी ऋतु का गीत गाऊँ।

सूत्रधार—ग्रीषम अभी लगी है और क्रीडा के योग्य भी है, इस्से इसी ऋतु का राग गाना चाहिये। देखो—

२—नाटक की बडाई जभी है जब देखने वाले कहें कि अच्छा हुआ नहीं तो इस काम में भले सीखे हुए को भी विश्वास नहीं होता कि खेल अच्छा ही करेंगे।

ध्रुपद चौताला भैरवी वा धनासिरी

कैसे नीके लागत हैं बासर ऋतु ग्रीषम के
जीवन को सन्ध्या प्यारी सुख उमहति है।
सरिता सरोवर कुण्ड माहिं केलि करिबें तें
तरिवे तें देह दूनो आनन्द लहति है॥
घनी-घनी छाया मे बन की पवन लागे
झुकि-झुकि आवे नीद कल ना गहति है।
त्रिविध समीर बहै पाटलि सुगन्धिसनी
लागति शरीर आछी शीतलता रहति है॥३॥

नटी—सच है।

[गाती है

राग बहार वा बसन्त

कैसे भ्रमर चुम्बन करत।
नाग केसरि को सुअङ्कन रहसि रहसिहि भरत॥
सिरस फूलन कान धरि बनयुवति मन को हरत।
देत शोभा परम सुन्दर सरस ऋतु लखि परत॥४॥

---

(३) ग्रीष्म के दिन कैसे अच्छे लगते हैं, साँझ समय मनुष्यों को ...ति आनन्द होता है, मन उमगता है, नदी और सरोवरों में न्हाने से ...रीर ठण्डा रहता है, घनी छाया में मन्दी और ठण्डी पवन पाटलि के ...लो की सुगन्धि लिए हुए आती है जिसके लगने से हृदय को सुख ...ोता है।

(४) देखो भौंरे कैसे धीरे धीरे नागकेसर से रस लेते हैं और उसे ...ङ्क मे भरते हैं फिर देखो बनवासिनी नवयौवना सिरस के फूलों का ...ैसा गहना बनाकर कान पर रखती है। यह ग्रीष्म ऋतु बड़ी सुन्दर है।

सूत्रधार—धन्य है अच्छा गाया इस्से सुन्ने वालो का चित्त एकाग्र होकर रङ्गभूमि चारो ओर चित्रालय के समान हो गई। अब कहो किस प्रकरण से सभा के सज्जनो को प्रसन्न करें।

नटी—अजी क्या अभी नहीं कह चुके हो कि अभिज्ञान शकुन्तला नामक नये नाटक की लीला करनी होगी।

सूत्रधार—हे चतुरी, भली सुध दिलाई। नहीं तो मैं इस समय भूल ही गया था, क्योकि—

दोहा

लै बरबस तेरौ गयो मधुर गीत मुहि सग।
ज्यो राजा दुष्यन्त कों लायो यहै कुरग॥५॥

[दोनो रङ्गभूमि से जाते हैं।

इति प्रस्तावना

—:o:—

(५) तेरा मधुर गीत मेरे मन को ऐसे खेंच ले गया जैसे दुष्यन्त को यह हरिन खेंच लाया है।

शकुन्तला नाटक

अंक १

स्थान बन

[दुष्यन्त रथ पर चढ़ा हुआ धनुष बान लिये हरिन को खेदता सारथी सहित आता है।]

सारथी - (पहिले हिरन की ओर फिर राजा की ओर देखकर)—हे आयुष्मान—

दोहा

लखि कर सायर अरु तुम्हे कर सायक सर चाप।
देखत हूँ खेदत मनो मृगहि पिनाकी आप ॥६॥

दुष्यन्त—हे सारथी! यह मृग तौ हमे दूर ले आया देखो कैसा—

चौपाई

फिर फिर सुन्दर ग्रीवा मोरत। देखन रथ पाछे जो घोरत॥
कबहुँक डरपि बान मति लागे। पिछलो गात समेटत आगे॥

---

(६) जब दक्ष का यज्ञ महादेवजी ने विध्वस किया तौ मृग का रूप धर के यज्ञ भागा, महादेवजी अपना पिनाक नाम धनुष लेकर उसके पीछे गए। सारथी कहता है कि हे राजा! इस हिरन के पीछे धनुष तान कर जाते हुए मुझे ऐसे दीखते हो मानो महादेवजी जाते हैं।

(७) पीछे आते हुए रथ को हिरन फिर फिर कर देखता जाता है, और बाल लगने के डर से कभी-कभी अगले शरीर से मिमटता है, मार्ग में उसके थके मुख से अधचाबी दाभ गिरी है, अब ऐसी कुलाच भरता है मानो धरती पर पैर ही नहीं रखता।

अधरोधी मग दाभ गिरावत। थकित खुले मुखतें बिखरावत॥
लेत कुलांच लखो तुम अबही। धरत पांव धरती जब तबही॥७॥

[चकित होकर

अब क्या किया जाय मुझे तो हिरन सहज दिखलाई भी नही देता।

सारथी—महाराज अब तक धरती ऊँची नीची थी इससे मैने रथ रोक-रोक कर चलाया था और इसी से यह कुरङ्ग दूर निकल आया परन्तु अब-भूमि एकसी आई इसे तुरन्त ले लेंगे।

दुष्यन्त—तो अब घोडो की रास छोड़ो।

सारथी—जो आज्ञा (मानो रथ के भर दौड चलता है) महाराज देखिये—

चौपाई

जबहि रास ढीली मै कीनी। तानि देह अगली इन लीनी॥
चलत कनोती लई दबाई। चमर शिखा हू हलन न पाई॥
देखो बढ़त इन्हे तुम आगे। रज खुरतारहु संग न लागे॥
अब तुरंग झटपटत ये ऐसे। सहि न सकत मृग वेगहि जैसे॥८॥

दुष्यन्त—(प्रसन्न होकर) सच है ऐसे झपटते हैं कि इन्द्र और सूर्य्य के घोडों को भी जीते लेते हैं—

चौपाई

दीखति वस्तु रही जो छीनी। तिन अब तुरत विपुलता लीनी।
जो दीखति ही बीच कटी सी। सो लखाति अब एक सटी सी॥

(८) रास ढीली होते ही घोड़े कनौती दबाकर ऐसे दौडे हैं कि सिर की चमरशिखा (कलङ्गी) भी नहीं हिलती और खुरों से उठी हुई धूल भी साथ नहीं लगती, अब ऐसे झपटते हैं मानो इस हरिन का वेग नहीं सह सकते।

(९) जो वस्तु दूर से पतली दीखती थी अब निकट आने पर मोटी

सहज स्वभाव वक्र जो कोई। सरल रूप दीखति अब सोई॥
छिन न दूर कछु छिनहु न नेरे। कारन अधिक वेग रथ केरे॥९॥

सारथी! देखो अब हम इसे गिराते हैं।

[धनुष पर बान चढ़ाता है

नेपथ्य में

हे राजा इसे मत मारो यह आश्रम का मृग है।

सारथी—(शब्द सुनता और देखता हुआ)—महाराज बान के सामने हरिन तो आया परन्तु बीच में ये तपस्वी खड़े हैं।

दुष्यन्त (चकित होकर)—अच्छा तो घोड़ों को रोको।

सारथी (रथ को ठहराता है)—जो आज्ञा।

एक तपस्वी दो चेलों समेत आता है

तपस्वी (बाँह उठाकर) हे क्षत्री! यह मृग आश्रम का है मारने योग्य नहीं है—

दोहा

नाहिन या मृग मृदुल तन लगन जोग यह बान।
ज्यों फूलन की राशि में उचित न धरन कृसान॥
कहाँ दीन हरिनान के अति ही कोमल प्रान।
ये तेरे तीखे कहाँ सायक बज्र समान॥ १०॥

दीखती है, जो कटी हुई सी थी वह अब जुड़ी निकली, जो पहिले नगीच पर टेढ़ी थी अब पीछे दूर रह जाने पर सीधी दीखती है, इस रथ के वेग के आगे दूर और निकट में कुछ अन्तर ही नहीं है।

(१०-११) इस हरिन के कोमल शरीर में बान मारना ऐसा है जैसे फूलों के ढेर पर आग रखना, भला देखो तो कहाँ यह कठोर बान और हरिन के कोमल प्रान, इससे हे राजा तू बान उतार ले। यह तो निरदोषियों की रक्षा को बनाया है न कि उनके मारने को।

लै उतारि या तें नृपति भलो चढ़ायो बान।
निरदोपिन मारक नहीं यह तारक दुखियान॥ ११॥

दुष्यन्त—लो मैं बान उतारे लेता हूँ।

तपस्वी (हर्ष से)—हे पुरुकुलदीपक! तुम्हे ऐसा ही चाहिये—

दोहा

उचित तोहि भूपति यह जन्म पौरकुल पाय।
जनमैगो तो घर सुवन गुनी चक्कवे आय॥ १२॥

दोनो चेले—(बाँह उठाकर) तुम्हारे चक्रवर्ती पुत्र हो।

दुष्यन्त—(प्रणाम करके) ब्राह्मणवचन सिर माथे।

तपस्वी—हे राजा, हम यज्ञ के लिए समिध लेने जाते हैं। आगे मालिनीतट पर कन्व महर्पि का आश्रम दीखता है अवकाश हो तो वहाँ चलकर अतिथि सत्कार लीजिये।

होत वहाँ जब देखिहो आँखिन तें महाराज।
विघ्न बिना तपसीन के धर्म्मपरायन काज॥
जानोगे नरनाह तब तुम अपने मन माह।
केती रच्छा करति यह मुर्वीलांछित बाह॥१३॥

दुष्यन्त—महर्पि आश्रम मे हैं कि नहीं?

तपस्वी—अपनी पुत्री शकुन्तला को अतिथिसत्कार की आज्ञा देकर उसी की ग्रहदशा निवारने के लिए सोमतीर्थ गए हैं।

---

(१२) हे राजा पुरवश मे जन्म लेकर तुम को इस समय बान उतार लेना ही उचित था। जाओ हम आशिर्वाद देते हैं कि तुम्हारे चक्रवर्ती पुत्र होगा।

(१३) उस आश्रम में जब तुम देखोगे कि तपस्वियों के धर्म्मकार्य कैसे निर्विघ्न होते हैं, तब जानोगे कि मेरी यह भुजा जिसमे धनुष की प्रत्यञ्चा के चिह्न ही आभूषण हैं, कितने सत्पुरुषों की रच्छा करती है।

दुष्यन्त—अच्छा हम उस कन्या को देखेंगे और वह हमारा भक्तिभाव महर्षि से कहेगी।

तपस्वी—सिधारिये हम भी अपने काम को जाते हैं।

[चेलों समेत जाता है

दुष्यन्त—हे सारथी घोडे हाँको इस पवित्र आश्रम के दर्शन करके हम अपना जन्म सफल करें।

सारथी—जो आज्ञा। [रथ को फिर बढाता है

दुष्यन्त—(चारों ओर देखकर)हे सारथी जो किसी ने बतलाया भी न होता तौ भी यहाँ हम जान लेते कि तपोवन समीप है

सारथी—महाराज ऐसे आपने क्या चिह्न देखे।

दुष्यन्त—क्या तुम को चिह्न नहीं दिखाई देते देखो—

चौपाई

रूखन तर मुनि अन्न परयो है। शुक कोटर तें यह जु गिर्यो है॥
कहूँ धरीं चिक्कन शिल दीसे। इंगुदिफल जिन पै मुनि पीसें॥
रहे हरिन हिलि ये मनुपन ते। नेक न चौंकत बोल सुनन ते॥
सोहति रेख नदी तट बाटा। बनी टपकि जल बल्कल पाटा॥१४॥

और देखो

चौपाई

पवन झकोरनि है जलकूला। बिटप किये जिन उज्जल मूला।
नवपल्लव दीखन धुंधराये। होमधुंआं जिन ऊपर छाये॥

---

(१४) तपोवन के चिह्न ये हैं कि तोतों की कोटरों से गिर कर सामक मकड़े की बाल रूखों के नीचे पडी हैं जहाँ तहाँ हिंगोट कूटने की चिकनी शिल रक्खी है हरिन मनुष्यों से ऐसे हिल रहे हैं कि हमारी आहट पाकर कुछ भी नहीं चौंकते पगडडियों में नदी तक गीले कपड़ों के बूँद से टपक टपक कर कैसी लकीर बन गई है।

उपवन अग्रभूमि के माहीं । कटि दाभ रहे जहँ नाही ॥
चरत फिरत निधरक मृगछोना । जिनके मन शका नैकोना ॥१५॥

सारथी- महाराज अब मैंने भी तपोवन के चिह्न देखे ।

दुष्यन्त (थोडा दूर चलकर)—हे सारथी तपोवनवासियो के काम मे कुछ विघ्न न पड़े इससे रथ यही ठहरा दो हम उतर लें ।

सारथी—मैं रास खैंचता हूँ महाराज उतर ले ।

दुष्यन्त—(उतर कर) तपस्वियो के आश्रम मे विनीत भेस से जाना कहा है इसलिये लो तुम ये लिए रहो (सारथी धनुष और आभूषन लेता है) और जब तक मै तपोवन वासियो के दर्शन करके आऊँ तुम घोड़ो की पीठ ठण्डी कर लो ।

सारथी—जो आज्ञा ।

[जाता है

दुष्यन्त—(घूमकर और देखकर)—यह आश्रम का द्वार है अब मै इसमे चलता हूँ ।

[सगुन देखकर

दोहा

शान्ति छेत्र आश्रम पहै पुन्नहि याके मॉह ।
कहा यहाँ फल दहिगी फरकत मेरी बॉह ॥
अचरज हू की बात ना फल याको यदि होइ ।
होनहार कहुँ न रुके जानत है सब कोइ ॥

---

(१५) पवन झकोरे हुए जल से नदीतट के वृक्षो की जड धुल धुल कर श्वेत निकल आई हैं नई कोपलो के पत्ते होम का धुआ लग कर धुंधले होगये हैं उपवन के आगे जिस भूमि से दाभ कट गई है मृगछौने निशङ्क चरते फिरते है ।

(१६) यह तो पुन्यछेत्र है यहां बाँह फटकने से क्या फल होगा और जो हो तौ कुछ अचरज भी नहीं है क्योंकि होनहार के सैकड़ो द्वार होते हैं

नेपथ्य में

सखियो, यहाँ आओ ! यहाँ आओ !

दुष्यन्त—(कान लगाकर)—इस फुलवाड़ी के दक्खिन ओर क्या आलाप सा सुनाई देता है। मैं भी वहीं चलूँ। (चारों ओर फिरकर और देखकर) अहा ! ये तो तपस्वियों की कन्या हैं जो अपने-अपने वय के अनुसार कोई छोटी कोई बड़ी गगरी लिए पौधे सीचने को आती हैं। धन्य है ! कैसा मनोहर इनका दर्शन है !!

दोहा

या आश्रम की तियन कौ जैसो गात अनूप।
मिलनो तैसो कठिन है रनवासन मे रूप॥
ऐसे ही बन की लता अपने गुनन प्रताप।
नित उद्यान लतान को देति लाज सताप॥१७॥

अब इस वृक्ष की छाया मे खड़ा हूँगा।"

[खड़ा होकर देखता है।

दो सखियों के साथ शकुन्तला घड़ा लिये आती है।

शकुन्तला—सखियो, यहाँ आओ ! यहाँ आओ !!

अनसूया—हे शकुन्तला मैं जानती हूँ पिता कन्व को आश्रम के बिरुले तुझ से अधिक प्यारे होगे, नहीं तो तुझ नई चमेली-सी कोमलाङ्गी को इनके सीचने की आज्ञा क्यो दे जाते।

शकुन्तला—हे अनसूया ! निरी पिता की आज्ञा ही नही, मेरा भी इन बृक्षो में सहोदर का सा स्नेह हो गया है।

[पेड को पानी देती है।

दुष्यन्त (आप ही आप)—यह कन्व की बेटी शकुन्तला क्यो

(१७) जैसे आश्रम की युवतियों का सुन्दर रूप रनवास की स्त्रियों में मिलना कठिन है, ऐसे ही बन की लता अपने गुनो से उद्यान (बाग) की लताओं को लज्जित करती है।

क्यों कर हुई। वह ऋषि बड़ा अविवेकी होगा जिसने ऐसी सुकु-
मारि को आश्रम-धर्म में लगाया है।

दोहा

सहज मनोहर रूप यह तनक बनावट नाहि।
ताहि लगावन चहत मुनि कठिन तपोव्रत माहिं॥
मोहि न दीखत है उचित उनको यहै बिचार।
मनहु कमलदलधार सों काटत छोकर डार॥१८॥

भला हो सो हो। अब तौ रूख की ओझल से इसे निशङ्क
बातचीत करते देखूँगा। [एकान्त मे बैठता है।

शकुन्तला—हे सखी अनसूया! मेरी बल्कल की चोली
प्रियम्बदा ने ऐसी कसकर बाँधी है कि सब अङ्ग जकड़ा जाता है
इसे तू ढीली कर दे।

अनसूया—अच्छा करती हूँ। [चोली ढीली करती है

प्रियम्बदा (हँस कर)—मुझे दोष क्यो देती है? अपने जोवन
को दे, जो तेरे उरोजो को पल-पल पै बढ़ाता है।

दुष्यन्त (आप ही आप)—इसने ठीक कहा।

चौपाई

ये सूक्षम गांठिन तें वांधे। बलकल बसन धरे दुहुँ कांधे॥
इनमे ढके न दीखत हेरे। मण्डल जुगल उरोजन केरे॥

---

(१८) इस कोमल अङ्गवाली से तपस्या कराना ऐसा है, जैसे
कमल की पखडी से छोकर की डाली काटना। इसलिये जिस मुनि ने
इसे तप मे लगाया है वह अविवेकी है। इस युवती का रूप बनावट का
सा नहीं है।

(१६) कन्धे पर बधे हुए और जुगुल स्तनो को ढाकते हुए
बल्कलवस्त्र में इसका उमगता शरीर पूरी शोभा नही पाता, जैसे पीले
पत्तो मे ढका हुआ फूल।

उमगति देह मनोहर ती की। पावति नहिं शोभा निज नीकी॥
छुप्यो फूल सुन्दर जिमि कोई। पीरे पातन के बिच होई॥१९॥

अथवा माना कि वल्कल वस्त्र इसके शरीर के योग्य नही है, फिर भी यह बात नहीं कि शोभा न देते हो, क्योंकि—

दोहा

सरसिज लगत सुहावनो यदपि लियो ढकि पंक।
कारी रेख कलंक हू लसति कलाधर अंक॥
पहरे बल्कल बसन यह लागत नीकी बाल।
कहा न भूषन होइ जो रूप लिख्यो विधि भाल॥२०॥

शकुन्तला—(आगे देखकर)—सखियो, देखो पवन के झोंको से बकुल के पत्ते कैसे हिलते हैं। मानो वह मुझे अगुलियो से अपने निकट बुलाता है। मैं जाती हूँ इसका भी मन रख आऊं।

[वृक्ष की ओर चलती है

प्रियम्वदा—सखी शकुन्तला तू छिन भर यही खड़ी रह।

शकुन्तला—क्यो।

प्रियम्वदा—इसलिए कि तेरे खड़े रहने से यह बकुल का पौधा ऐसा अच्छा लगता है मानो इससे लता लिपट रही है।

शकुन्तला—इसी से तो तेरा नाम प्रियम्वदा हुआ है।

दुष्यन्त (आप ही आप)—प्रियम्वदा ने बात प्यारी कही, परन्तु सच्ची भी कही, क्योंकि—

दोहा

अधर रुचिर पल्लव नए भुज कोमल जिमि डार।
अगन मे यौवन सुभग लसत कुसुम उनहार॥२१॥

---

(२०) कमल कीच मे भी शोभायमान लगता है और चन्द्रमा में काली रेखाभी सोहती है। इस भाँति इस सुन्दरी के शरीर पर बल्कल वस्त्र भी अच्छा लगता है। जिसे विधाता ने रूप दिया उसे सभी सोहाता है।

अनसूया—हे सखी शकुन्तला, देख यह नई चमेली जिसका नाम तैंने वनज्योत्स्ना रखा है इस आम की कैसी स्वयम्बरवधू बनी है। क्या तू इसे भूल गई*।

शकुन्तला—जो इसे भूल गई तौ मै अपने आप को भी भूल जाऊँगी। [लता के निकट जाती है।

सखी अच्छी ऋतु मे ये लता वृक्ष मिले हैं। वनज्योत्स्ना तौ अब नए फलो मे नवयौवना हुई और आम भी नई डालियो से उपभोग के योग्य है। [खडी हुई देखती है।

प्रियम्वदा (हस कर)—सखी अनसूया, तू जानती है शकुन्तला वनज्योत्स्ना को क्यो ऐसे चाव से निहारती है।

अनसूया—न सखी, मैं नही जानती तू बतला दे।

प्रियम्वदा—इसलिये कि जैसे वनज्योत्स्ना को अपने समान वृक्ष मिल गया है, मुझे भी मेरे समान बर मिले।

[पानी का घडा झुकाती है।

दुष्यन्त (आप ही आप)—कही यह ऋषि की बेटी दूसरी जात की स्त्री से तौ न हो। अब सन्देह को छोड़ूँ क्योंकि—

दोहा

भयो जु मेरो शुद्ध मन अभिलाषी या माहि।
ब्याहन छत्री जोग यह सशय नेकहु नाहि॥२२॥

---

(२) इसके लाल होठ हैं सोई मानो लता के नये पत्ते हैं। बाहे हैं सोई कोमल शाखा हैं और अंगों मे भरा यौवन है सोई मनोहर फूल है।

*स्वयम्बरवधू अर्थात् जिसने अपना पति आप ढूँढ लिया हो।

(२२) मेरा मन इस पर आसक्त हुआ इससे मैंने जान लिया कि वह क्षत्री के ब्याहने योग्य है, क्योंकि सन्देह को सज्जनों के मन की भावना ही निवार देती है।

होत कछू सन्देह जब सज्जन के हिय आय।
अन्तःकरण प्रवृत्ति ही देति ताहि निबटाय ॥२२॥

परन्तु फिर भी इसकी उत्पत्ति का ठीक ठीक पता लगाऊँगा।

शकुन्तला (घबरा कर)—दई, दई पानी की बूँदों से डरा हुआ यह ढीठ भौंरा नई चमेली को छोड़ बार-बार मेरे ही मुख पै आता है।

[भौंरे की बाधा दिखलाती है

दुष्यन्त (चित्त लगाकर देखता है)—इसका झीकना भी अच्छा लगता है।

दोहा

उतही मे मोरति दृगन आवत अलि जिहि ओर।
सीखति है मुग्धा मनो भय मिस भृकुटि मरोर ॥२३॥

और भी—

[ईर्षा सी दिखला कर

सवैय्या।

दृग चोकत कोए चले चहुधाँ अग बारहि बार लगावत तू।
लगि कानन गुंजत मन्द कछू मनो मर्म की बात सुनावत तू।
कर रोकती कौं अधरामृत लै रति कौं सुखसार उठावत तू।
हम खोजत जातिहि पाति मरे धनि रे धनि भोर कहावत तू ॥२४॥

---

(२३) जिधर भौंरा आता है उधर ही मुह फेरती है मानो भय का मिस करके मुग्धापन ही में भौंह चढाना सीखती है।

(२४) चञ्चल कोयों में कपती हुई आखो को तू बार बार स्पर्श करता है कान के पास जाकर ऐसा धीरे-धीरे गूँजता है मानो कुछ मरम की बात सुनावेगा जब तक तुझे हाथो से रोकती है तू होठों का रस ले जाता है अरे भौंरे तू धन्य है हम तो यही खोजते मरे कि यह किस जाति की बेटी है। (होठों के रस को कामी लोग रतिसर्वस्व कहते हैं)।

शकुन्तला—यह ढीठ भौंरा न मानेगा यहाँ से कही अन्त चलू
[कटाक्ष करके दूसरी ठौर खड़ी होती है

यहाँ भी पापी ने पीछा न छोड़ा अब क्या करूँ सखियो इस दुष्ट से मुझे बचाओ।

दोनो सखी (मुसका कर ,—हम बचाने वाली कौन हैं राजा दुष्यन्त की दुहाई दे वही बचावेगा क्योकि तपोवनो की रक्षा राजा के सिर होती है।

दुष्यन्त (आप ही आप)—यह अवसर प्रगट होने का अच्छा है। मुझे डर किसका है। [इतना कह कर

परन्तु इससे तो खुल जायगा कि मैं राजा हूँ अब हो सो हो इन से बातचीत करूँगा

शकुन्तला (थोड़ी दूर पर खड़ी होकर)—हाय यहाँ आया अब कहाँ जाऊँ।

दुष्यन्त (झटपट आगे बढकर)

दोहा।

जब लग जगपालक बन्यो जग मे नृप पुरुवंस।
सब निधि समरथ करन को दुष्ट जनन विध्वस ॥
तब लग ऐसो कौन जो छोडि सजन की रीति।
मुग्धा मुनिकन्यान मे करतु कछूक अनीति ॥२५॥

(राजा को देखकर सब चकित सी होती हैं)

अनसूया—अजी यहाँ अनीति करने वाला तो कोई नही है, हमारी यह प्यारी सखी भौंरे ने घेरी थी इससे भय खा गई।
[शकुन्तला की ओर दृष्टि करती है

---

(२५) जब तक मै पुरुवशी इस पृथ्वी का रखवाला बना हूँ तब तक कौन ऐसा है जो मुनियो के साथ अन्याय कर सके।

दुष्यन्त (शकुन्तला के सम्मुख आकर)—हे सुन्दरी तेरा तपोव्रत तौ सफल है। [शकुन्तला लजाती सी चुप खड़ी रहती है

अनसूया—तुम सरीके पाहुने आये, अब तपोव्रत क्यो न सफल होगा। सखी शकुन्तला तू जा कुटी से कुछ फल फूल समेत अर्घ ले आ पाँव धोने को जल तौ यही है।

[पेड़ सींचने के घड़े की ओर देखती है

दुष्यन्त—तुम्हारे मीठे बोलो ही से अतिथिसत्कार हो गया।

प्रियम्वदा—तौ आओ पाहुने घडीक इस सप्तपर्ण के नीचे घनी छाया मे शीतल चबूतरे पर बैठकर विश्राम ले लो।

दुष्यन्त—तुम भी तो इस काम से थक गई होगी।

अनसूया—(हौले शकुन्तला से)—अतिथि के पास बैठना हम को उचित है आओ यहाँ बैठे। [सब बैठती हैं

शकुन्तला (आप ही आप)—इस पुरुष को देख क्यो मेरे मन मे ऐसी बात उपजती है जो तपोवन के योग्य नहीं।

दुष्यन्त—(एक-एक करके सब देखता है)—हे युवतियो समान वयस और समान रूप में तुम्हारी आपस की प्रीति बड़ी अच्छी लगती है।

प्रियम्वदा (हौले हौले अनुसूया से)-सखी अनसूया यह अतिथि कौन है जिसके रूप मे चतुराई के साथ गम्भीरता और बोली मे ऐसी मधुरता है, यह तौ कोई बडा प्रतापी जान पड़ता है।

अनसूया (हौले प्रियम्वदा से)—सखी मैं भी इसी सोच बिचार मे हूँ।

अब इससे कुछ पूछूँगी। (प्रगट) महात्मा तुम्हारे मधुर बचनो के विश्वास मे आकर मेरा जी यह पूछने को चाहता है कि तुम किस राजवश के भूषण हो ? और किस देश की प्रजा को विरह मे व्याकुल छोड़ यहाँ पधारे हो ? क्या कारन है

जिससे तुमने अपने कोमल-गात को इस कठिन तपोवन में आकर पीड़ित किया है ?

शकुन्तला—(आप ही आप)—अरे मन तू उतावला मत हो धीरज धर तेरे हित की अनसूया ही पूछ रही है।

दुष्यन्त (आप ही आप)—अब मै अपने को क्या बतलाऊं और किस भाँति इसे धोखा देकर आप को छुपाऊँ हो सो हो इससे यो कहूँगा। (प्रगट) हे ऋषिकुमारि पुरुवशो राजा ने मुझे राज के धर्म्मकाज सोप रक्खे हैं इसलिए आश्रम मे आया हूँ कि देखूँ यहाँ तपस्वियो के कामो मे कुछ विघ्न तौ नही होता।

अनसूया—महात्मा तुम्हारे पधारने से धर्म्मचारी सनाथ हुए।

[शकुन्तला कुछ लज्जित और मोहित सी होती है

दोनो सखी—(शकुन्तला और दुष्यन्त के भावों को जानकर)—हे शकुन्तला कदाचित आज पिताजी घर होते।

शकुन्तला—(रिस सी होकर)—तौ क्या होता।

दोना सखी—तौ इस अनोखे पाहुने को प्यारी से प्यारी वस्तु देकर भी कृतार्थ करते।

शकुन्तला—चलो परे हो तुम मन से गढ़कर बात कहती हो मै तुम्हारी न सुनूंगी।

दुष्यन्त—(अनसूया और प्रियम्वदा से)—हे युवतियो अब मै भी तुम्हारी सखी का वृत्तान्त पूछता हूँ।

दोनो सखी—अजी यह भी तुम्हारा अनुग्रह है।

दुष्यन्त—कन्व महर्षि तौ सदा के ब्रह्मचारी हैं फिर यह तुम्हारी सखी उनकी बेटी कैसे हुई ?

अनसूया—अजो सुनो कुशिकवंशी एक बड़ा प्रतापी राजर्षि है।

दुष्यन्त—हां मैंने भी सुना है।

अनसूया—उसी से हमारी सखी की उत्पत्ति जानो और कन्व जी इस के पिता इसलिये कहाते हैं कि पड़ी हुई को उठा लाए थे और उन्हीं ने पाली पनासी है।

दुष्यन्त—पड़ी हुई यह सुन कर तौ मुझे अचम्भा होता है अब इस का वृत्तान्त जड़ से सुनना चाहता हूँ।

अनसूया—अच्छा सुनो मैं कहती हूँ। जब उस राजर्षि ने गौतमी तीर पर उग्र तप किया तौ कहते हैं कि देवताओं ने कुछ शका मान तप बिगाड़ने वाली मेनका नाम अप्सरा उसके पास भेजी।

दुष्यन्त—सच्च है देवता औरों की तपस्या से डर जाते हैं। भला फिर क्या हुआ।

अनसूया—बसन्त के आरम्भ में मेनका की उनमादिनी छबि निरखते ही— [इतना कह लज्जित होती है

दुष्यन्त—आगे जो कुछ हुआ हमने जान लिया। तौ यह अप्सरा की बेटी है।

अनसूया—हां जी।

दुष्यन्त—ठीक है नहीं तौ—

दोहा

कैसे ऐसे रूप की नर तें उतपति होइ।
भूतल तें निकसति कहूँ बिज्जुछटा की लोइ ॥२६॥

[शकुन्तला शिर झुकाकर बैठती है

(आप ही आप) मनोकामना सिद्ध होने के लच्छन तौ दिखाई दिये हैं परन्तु सखी ने बर मिलने की बात हस कर

---

(२६) धरती से बिजली कभी नहीं निकलती ऐसे ही यह शकुन्तला भी मनुष्य जाति से उत्पन्न न हुई होगी।

कही थी इस्से दुबधा में पड़ के मेरा मन अधीर होता है।

प्रियम्वदा—(मुसकाती हुई पहले शकुन्तला की ओर फिर राजा की ओर देखकर) कुछ और भी पूछने की मन मे दीखती है।

[शकुन्तला अंगुली से सखी को झिड़कती है

दुष्यन्त—तुमने भली मेरे मन की जान ली। मुझे इस अनूठे चरित के सुन्ने की अभी और -चाह है इसलिये कुछ पूछूंगा।

प्रियम्वदा—सोच विचार मत करो तपस्वियो से तो जो कोई चाहे निधड़क पूछ सकता है।

दुष्यन्त—मै यही पूछता हूँ कि—

सवैय्या।

रतिराज के काज बिगारन को रिपु है बन को ब्रत लोक कहे।
यह सुन्दरि प्यारी तिहारी सखी रहिहै कहो को लग ताहि सहे॥
तजि देहिगी ब्याह भए पै किधो जब पीतम आइके बाँह गहे।
अपने से किधो दृगवारी मृगीन मे जन्म बितावति यो ही रहे॥२७॥

प्रियम्वदा—अजी ब्याह की कथा चलाई हमारी सखी तो धर्म्म-कर्म्म मे भी पराए वश है तिस पर भी पिता का सकल्प है कि समान वर मिले तो इसे ब्याहे।

दुष्यन्त—(*आप ही आप*)—यह सकल्प पूरा होना तो कुछ कठिन नहीं है।

सोरठा।

रे मन तजि अब सोग दूर भयो सन्देह सब।
कह्यो धरन तन योग रत्न जो मैं जान्यो अनल॥२८॥

---

(२७) कामदेव के व्यवहारों का बिगाड़ने वाला बैराग है सो तुम बतलाओ कि शकुन्तला इस बैराग को ब्याह तक ही सहेगी अथवा जन्म भर अपनी सी आंखों वाली हरनियों में बिना ब्याही रहेगी।

(२८) हे हृदय अब प्रसन्न हो क्योंकि जिस को तू आग (अर्थात्

शकुन्तला—(रिस सी होकर) ले अनसूया मैं तो जाती हूँ।

अनसूया—क्यों ज़ाती है।

शकुन्तला—मैं गोमती से जाकर कहूँगी कि प्रियम्वदा मुझसे अनकहनी बात कहती है।

अनसूया—हे सखी यह तो उचित नही है कि तू ऐसे अनोखे पाहुने का बिना सत्कार किये छोड़ जाय—

शकुन्तला विना उत्तर दिये चलने को होती है

दुष्यन्त—(रोकने को उठता है परन्तु आप ही रुक जाता है

दोहा

मै पाछे मुनिधीय के चह्यो चलन करि चाव।
मर्यादा आडी भई आगे दियो न पाव॥
आसन तें न उठ्यो तउ ऐसो मोहि लखात।
मानो बैठयो आय फिर चलि के हाथ छः सात॥२६॥

प्रियम्वदा—(शकुन्तला को रोककर) सखी यहाँ से जाने न पावेगी।

शकुन्तला—(भोंह चढाकर) क्यो ?

प्रियम्वदा—क्योकि अभी तुझे दो पौधे सीचने को और रहे हैं इस ऋण को चुका दे तब चली जाना—

[चलती हुई को बलकर रोकती है

ब्राह्मण की वेटी) समझा था सो तौ गले में पहनने योग्य रत्न निकला (अर्थात् शकुन्तला तौ क्षत्री की लड़की निकली)।

(२६) मुनिसुता के पीछे मैंने चलना चाहा परन्तु मर्यादा ने रोक लिया यद्यपि स्थान से उठा नहीं था तौ भी ऐसा जानता हूँ मानों कुछ चलकर लौट आया।

दुष्यन्त—वृक्ष सीचने ही से तुम्हारी सखी थकी सी दीखती है क्योकि—

सवैय्या

झुकि कंध रहे लिये गागरिया भई लाल हथेरी दुहूँ कर की।
उचकें कुच जानि परे अजहूँ बढ़ि श्वास गई छतिया धरकी॥
मुख छाय पसीनन बूँद रही न हिले न झुले फुलवा तरकी।
कर एक लिए बिथुरी अलकें खुलि जूरे की गांठ तरे सरकी॥३०॥

इसलिए लो यह ऋण मुझे यों चुकाने दो।

[अँगूठी देना चाहता है

(दुष्यन्त का नाम अँगूठी पर बाँच कर दोनों एक दूसरी की ओर निहारती हैं)

दुष्यन्त—इसके लेने मे तुम यह सकोच मत करो कि यह राजा की वस्तु है क्योकि मै भी तो राजपुरुप हूँ मुझे यह राजा ही से मिली है।

प्रियम्वदा—तो महात्मा इसे अपनी अँगुली से न्यारी मत करो तुम्हारे कहने ही से ऋण चुक गया (मुसका कर) सखी शकुन्तला इस महात्मा ने अथवा महाराज ने दया करके तुझे ऋण से छुडा दिया अब तू चली जा।

शकुन्तला—(आप ही आप)—जो अपने वश मे रही तो (प्रगट) जाने की आज्ञा देने वाली अथवा रोकने वाली तू कौन है।

दुष्यन्त—(शकुन्तला की ओर देख कर आप ही आप)जैसा मेरा मन इससे उलझा है क्या इसका भी ऐसा ही मुझ मे लगा

पानी सींचने की घडियाँ उठाते-उठाते हथेली लाल हो गई है स्तनों के उठने से जान पडता कि परिश्रम से श्वास बढ गई है तरकी अर्थात् करनफूल हिलता नहीं है क्योंकि पसीने से उसकी पखड़ी कपोल पर चिपक गई है जूड़े की गाँठ खुल गई है इससे बाला को एक हाथ मे थाम रही है।

है हो कि न हो मनोरथ सिद्ध होने के लच्छन तौ दीखते हैं क्योंकि—

दोहा।

यदपि मिलावत नाहिं यह मो बातन मे बात।
कान धरति इतही तऊ जब मैं कछु बतरात॥
होति न ठाढ़ी आयके मेरे सन्मुख बाल।
तदपि न दूजी ओर कहुँ फेरति दीठि रसाल॥३१॥

[नेपथ्य में

हे तपस्वियो आओ आश्रम के जीवो की रक्षा करो मृगया विहारी राजा दुष्यन्त निकट आ पहुँचा देखो—

दोहा।

आले बल्कल बसन ये तपसिन डारे लाय।
आश्रम के जिन तरुन पै डारन तें लटकाय॥
तिनके उपर परति है उड़ि उड़ि रज खुरतार।
मानो टोड़ी दल गिरत साँझ अरुण की बार॥३२॥

और देखो—

---

(३१) यद्यपि शकुन्तला मेरी बात में बात नहीं मिलाती तौ भी जब मैं कुछ कहता हू मेरी ही ओर कान लगाती है और यद्यपि मेरे सामने मुख नहीं करती तौ भी बहुधा दूसरी ओर नहीं देखती।

(३२ घोड़ों की खुरतार से (गेरुए रंग की) धूल उड़ उड़ कर वृक्षों पर सूखते हुए आले वस्त्रों में ऐसी गिरती है मानों सन्ध्या की अरुणिमा में चमकता हुआ टीड़ी-दल।

सवैय्या ।

रथ देखि मतंग डर्‌यो वन कौ यह् मांहि तपोवन आवत है ।
पल,लंगर वेलि बनाय मनो हरिनाम के झुंड भगावत है ॥
तप को वनि मूरति विघ्न किंधो बल सो तरु तोरत धावत है ।
मुख मोरि निहारत पाछे जवे रद कन्ध सो एक लगावत है ॥२३॥

[ऋषि कुमारी कान लगा कर सुनती हैं और चौंकती हैं

दुष्यन्त (आप ही आप) अरे पुरवासियो धिक्कार है तुम को कि तुमने मुझे ढूँढ़ते ढूँढ़ते यहाँ आकर तपोवन मे विघ्न डाला । अब मुझे इन के पास जाना पडा ।

दोनो सखी—अर्जी अब तौ हम इस कुलाहल से ववडाती हैं आज्ञा दो तौ अपनी कुटी को जाये ।

दुष्यन्त—(वेग वेग) तुम जाओ मै भी ऐसा उपाय करूँगा जिससे तपोवन मे विघ्न न होने पावे ।

[सब वैठती हैं

दोनो सखी—हे महात्मा जैसा अतिथिसत्कार होना चाहिये हम से नहीं वना इसलिये हम यह कहते लजाती हैं कि कभी फिर दर्शन देना ।

दुष्यन्त—नहीं नहीं यह वात नहीं है तुम्हारे देखने ही से हमारा सत्कार हो गया ।

शकुन्तला—हे अनसूया एक तो मेरे पांव में नई दाभ की

---

(२३) यह वन का हाथी राजा के रथ से डरा हुआ हरिनों को व्याकुल करता तपोवन मे हमारी तपस्या के लिए विघ्न की मूर्ति वन कर वृक्षों को तोडता और पैरों में लता का लगर डाले घूमता आता है जब पीछे की ओर देखता है तो एक दात कन्धे से लगा लेता है ।

अनी लगी है दूसरे कुरे की डाल मे अचल उलझा है नैक ठैरो तौ मैं इन से निबट लूँ ।

(दुष्यन्त ही की ओर देखती हुई और मिस करके ठिठकती हुई सखियों समेत जाती है)

दुष्यन्त—अब मुझे नगर की ओर जाने की तौ चाह रही नहीं इसलिये साथ वालो का डेरा तपोवन के निकट ही कराऊँगा शकुन्तला के प्रेमव्यवहार से मैं अपना छुटकारा नही देखता ।

दोहा ।

तन तौ आगे चलत है मन नहि सग लगात ।
उडत पताकापाट ज्यो मारुत सोंही जात ॥३४॥

[सब जाते हैं,

(३४) शरीर तो मेरा आगे को चलता है परन्तु मन पीछे रहा जाता है जैसे पवन के सन्मुख चलने में झडी की ध्वजा पीछे ही को फैराती है ।

अंक २

स्थान वन के समीप राजा का डेरा

उदास रूप मे माढव्य आता है।

माढव्य (ऊँची श्वास लेकर) इस मृगयाशील राजा की मित्रता से हाय हम तो बडे दुखी हैं दुपहरी मे भी यह मृग आया वह वाराह गया उधर शार्दूल जाता है यही कहते इस वन से उस मे उससे इस मे भागना पडता है ग्रीषम मे कही वृक्ष की छाया भी इतनी नही मिलती जहाँ कुछ विश्राम लिया जाय। पहाड की नदियो मे वृक्षो के पत्ते गिर कर सड़ गये हैं। प्यास लगे तो उन्ही का बेस्वाद पानी पीना पड़ता है और खाने को बहुधा शूल पर भुना हुआ माँस मिलता है सो भी कुसमय। घोड़े के साथ दौडते दौड़ते देह ऐसी शिथिल हो जाती है कि रात मे भी सोना नही मिलता और जो कुछ नींद आई भी तो बड़े तड़के ही दासी जाये चिड़ीमार चलो वन को चलो वन को यह चिल्ला कर मुझे जगा देते हैं ये दुःख तो थे ही तब तक घाव मे नया घाव और लगा कि कल हम से बिछडकर राजा मृग के पीछे चलता चलता तपस्वियो के आश्रम मे पहुँचा वहाँ मेरे अभाग्य से उसकी दृष्टि एक तपस्वी की कन्या पर जिसका नाम शकुन्तला है पड गई अब नगर को लौटना कैसा, उसी के सोच मे आज रात भर स्वामी की आँख नही लगी। अब क्या किया जाय जब तक राजा को नित्य कर्म्म करता हुआ देख न लूँगा न जानें क्या गति मेरी होगी (घूमता और देखता है) सखा तो वह आता है और वन मे फूलो की माला पहने हुए धनुषधारिनि यवनी भी साथ हैं। आता तो इधर ही है अब मैं भी अग-भग करके खडा हो जाऊँ (लाठी टेककर खडा होता है। चलो यों ही विश्राम सही (ऊपर कही हुई स्त्रियों समेत दुष्यन्त आता है)

दुष्यन्त—

दोहा

प्रिया मिलन दुर्लभ तऊ लखि लखि बाके भाव।
मेरे हिय उपजत खरी मिलबे ही कौ चाव॥
पूरो यद्यपि भयो नही मन चीत्यो रतिनाह।
पै सगम सुख लैन को रही दुहुन चित चाह॥३५॥

[मुस्करा कर

जब किसी की किसी से लगी हो और वह अपने मन की चाह से उसके मन की चाह अनुमान करे तौ ऐसा ही धोखा खाता हैं।

चौपाई

यद्यपि निहारि और ही ओरी। प्रेम दीठि प्यारी ने मोरी॥
मन्द चली यदि भार नितम्बा। मनहु ललित गति करति विलम्बा॥
मारग रोक सखी जब लीनो। झिरकि ताहि रिस,सो यदि दीनो॥
मेरहि काज कियो सब वाने। अहा कामि स्वारथ पहचाने॥३६॥

माढव्य (जैसे खड़ा था वैसे ही खडा है)—हे मित्र मेरे हाथ नही उठते इसलिए बचनो ही से आशिर्वाद देता हूँ तुम्हारी जय रहे।

---

(३५) प्यारी का मिलना कठिन है परन्तु उसके भाव देख कर मुझे विश्वास होता है कि मिलेगी क्योंकि यद्यपि कामदेव का कारज सिद्ध नहीं हुआ परन्तु हम दोनों के मन में मिलने की चाह रही है।

(३६) उसने चाहे और ही ओर देखा हो परन्तु मैंने यही जाना कि मुझी पर स्नेह की दृष्टि की है वह चाहे नितम्बो के बोझ ही से मदगति चली हो परन्तु मैंने यही समझा कि मुझे दिखाने को अठखेली करती है फिर जब उसे सखी ने चलने से रोका तब वह चाहे रिस ही हुई हो परन्तु मेरे मन में यही सिखी कि यह भी कुछ कटाक्ष मुझी पर है, सत्य है अपना प्रयोजन देखने में प्रेमीजनों की दृष्टि बड़ी पैनी होती है।

दुष्यन्त—कहो सखा तुम्हारा अंग-भंग क्यो हुआ।

माढव्य—अपनी अंगुली से आँख कुचाकर आपही पूछते हो कि आँसू क्यो आए।

दुष्यन्त—हम नही समझे अब फिर समझा कर कहो।

माढव्य—देखो यह वेत कुब्जो की होड़ करता है सो कहो अपने बल से करता है अथवा नदी प्रवाह से।

दुष्यन्त —नदी के प्रवाह से झुका है।

माढव्य—ऐसे ही मेरे अग भग के भी तुम्ही कारण हो।

दुष्यन्त—क्योंकर

माढव्य—तुम तो अब राजकाज छोड इस भयंकर निरजन वन मे वसकर अहेरियो के काम करोगे परन्तु मै सत्य ही कहता हूँ कि जंगली पशुओ के पीछे दिन प्रतिदिन भागते-भागते मेरे अंगो के जोड, हिल गये हैं इसलिये दया करके मुझे एक दिन तो विश्राम लेने को छोड जाओ।

दुष्यन्त—(आप ही आप) यह तो यो कहता है उधर मेरा चित्त भी ऋषिकुमारी की सुध में आखेट से निरुत्साह हो गया है क्योकि—

सोरठा

शर चढाय यह चाप, तानि सकतु नहि मृगन पै।
जिन सिखई प्रिय आप, भोरी चितवनि सग वसि ॥३७॥

माढव्य—(राजा के मुख की ओर देख कर) तुम्हारे मन मे जाने क्या है मेरी वात तो ऐसी हो गई जैसे वन मे रोना।

दुष्यन्त—(मुसकाकर) मेरे मन मे यही है कि अपने सखा की वात मानूं

---

(३७) जिन हरिजनों ने शकुन्तला को भोली चितवन सिखाई है उन पै धनुप चढ़ाकर वान क्योंकर छोड़ सकूँगा।

माढव्य—तुम्हारी बड़ी आयुर्बल हो।

[उठकर चलना चाहता है

दुष्यन्त—मित्र ठैर अभी हम को कुछ और कहना है सो सुन ले।

माढव्य—कहिये।

दुष्यन्त—जब तू विश्राम ले चुके तब हम एक ऐसे काम में तुझसे सहायता लेंगे जिसमे कुछ दौड़ना भागना न पड़ेगा।

माढव्य—क्या लड्डू खिलावाओगे।

दुष्यन्त—अभी कहता हूँ।

दुष्यन्त—कोई यहाँ है। [द्वारपाल आता है

द्वारपाल—स्वामी की क्या आज्ञा है।

दुष्यन्त—रैवतक तुम सेनापति को बुला लाओ।

द्वारपाल—बहुत अच्छा (बाहर जाकर सेनापति सहित आता है)—आओ महाराज कुछ आज्ञा देने के लिए तुम्हारी बाट देखते हैं।

सेनापति (दुष्यन्त की ओर देखकर)—मृगया को दोष तौ देते हैं परन्तु हमारे स्वामी को तौ गुणदायक ही हुई है।

चौपाई

नरपति देह अधिक बलवाना। दीरघ गिरिचर नाग समाना॥
भए क्रूर अगले अँग जाके। खेंचत बार बार धनवा के॥
ब्यापत श्रम न पसीना लावे। धूर लगत कछु खेद न पावे॥
भई यदपि नैसुक दुबराई। बडे डील नहि देति दिखाई॥३८॥

---

(३८) बार-बार धनुष खैंचने से महाराज का अगला शरीर ऐसा कडा हो गया है जैसे पहाड़ के हाथी का अब धूप नहीं व्यापता न थोड़े परिश्रम से थकावट का क्लेश होता है न पसीना आता है दौड़ धूप से कुछ दुबलाई तौ आ गई है परन्तु बड़े शरीर मे दिखाई नहीं देती।

(राजा के निकट जाकर)—स्वामी की जय हो। महाराज बन मे आखेटी पशुओ के खोज देखे गए हैं आप कैसे बैठे हैं।

दुष्यन्त—इस माढव्य ने निन्दा करके मृगया मे मेरा उत्साह मन्दा कर दिया है।

सेनापति (हौले माढव्य से)—सखा तू अपनी बात पर बना रह मै टकुरसुहाती कहूँगा। प्रगट। महाराज इस रांडके को बकने दीजिये भला इस के तो आप ही प्रमाण हैं कि मृगया मे कितने गुण होते हैं।

सवैय्या।

कछु मेद कटै अरु तुन्दि घटै छटि के तन धावन जोग बने।
चितवृत्ति पशून की जानि परै भय क्रोध मे लेति लपेट घने॥
अति कीरति है धनुधारिन की चलतो यदि बान ते बेझो हने।
मृगया तें भलो न बिनोद कोई ताहि दोपन वाहि वृथा ही गने॥३६॥

माढव्य (रिस मे)—अरे राजा ने तो मृगया छोड दी तुझे क्या हुआ है जो ऐसी बातें कह कर फिर उत्साह दिलाता है तू बन मे बहुत दौड़ता फिरता है कहो मनुष्य की नाक के लोभी किसी बूढे रीछ के मुँह मे न पड जाय।

दुष्यन्त—हे सेनापति यह आश्रम का समीप है इसलिये हम आखेट की बड़ाई करने मे तुम्हारा पक्ष नही ले सकते आज तो

---

(३६) मृगया में ये गुण हैं कि मेदा (चरबी) घटाकर और तोंद छाँट कर शरीर को चलने फिरने के योग्य बनाती है पशुओं के चित्त की वृत्ति अर्थात् कभी भय कभी क्रोध इत्यादि का ज्ञान कराता है और चलता वेझा मारना सिखाती है यह तो मन बहलाने की सब मे अच्छी बात है फिर न जाने लोग इसे दोष क्यों लगाते हैं।

चौपाई

भैंसन देहु करन रंगरेली। सींग पखारि कुण्ड बिच केली॥
हरिन यूथ रूखन तर आवें। बैठ जुगार करत सुख पावें॥
शूकर वृन्द डहर में जाईं। खोद निडर मोथाजर खाईं॥
शिथिल प्रत्यञ्चा धनुष हमारो। आज त्यागि श्रम होइ सुखारो॥४०॥

सेनापति—जो इच्छा महाराज की।

दुष्यन्त—आगे जो आखेटी लोग बढ़ गए है उन्हें लौटा लो और सेना वालो को बरज दो कि तपोबन मे कुछ विघ्न न डालें क्योंकि—

दोहा

शान्ति भाव तपसीन मे यद्यपि होत प्रधान।
गुप्ततेज राखत तऊ अन्तर अग्नि समान॥
ज्यों शीतल रविकान्तमणि छूवेति करति न दाह।
भानु तेज ते त्रास लहि उगलति ज्वाल प्रवाह॥४१॥

सेनापति—जो आज्ञा स्वामी की।

माढव्य—चल जा दासीजाय तेरा उत्साह दिलाना निष्फल हुआ। [सेनापति जाता है॥

---

(४०) भैसों को आनन्द से पोखरो, मे तैरने दो हरिणों को घनी छाया में बैठ कर रोंथ करने दो सूअरो को अधसूखे तालों में मोथे की जड़ खोद खाने दो और मेरे धनुष की प्रत्यञ्चा ढीली हो गई है आज इसे भी विश्राम लेने दो।

(४१) तपस्वियों का स्वभाव ऐसा होता है जैसा सूर्य्यकान्तमणि का कि छूने में ठंडी होती है परन्तु सूरज के तेज से तिरस्कार पाकर अग्नि उगलती है यद्यपि इसमें शान्तिभाव मुख्य है परन्तु अन्तर में तेज भी ऐसा रखते हैं जैसे भस्म करने वाली अग्नि।

दुष्यन्त—(दासियों की ओर देख कर)—तुम भी अपना आखेट भेष उतार डालो और हे रैवतक तू अपने काम पर सावधान रह।

सब सेवक—जो आज्ञा महाराज की। [सब जाते हैं।

माढव्य—इन मक्खियो को तौ आपने भला यहाँ से दूर किया अब सुन्दर वृक्षो की छाया मे इस शिला पर बैठिये मैं भी सुख से विश्राम लूँगा।

दुष्यन्त—आगे तुही चल।

माढव्य—आइये। [दोनों जाकर बैठते हैं।

दुष्यन्त—अरे माढव्य तुझे आँखो का क्या फल मिला जब कि तैंने देखने योग्य पदार्थों मे सबसे उत्तम को तो देखा ही नही।

माढव्य—क्या मेरे सामने महाराज नित्त नहीं रहते हैं परन्तु मैं तुझ से उस शकुन्तला के मद्धे कहता हूँ जो आश्रम की शोभा है।

माढव्य—(आप ही आप)—मै इस को इस विषय मे कुछ कहने का अवसर न दूँगा (प्रगट) हे मित्र जो वह तपस्वी की बेटी है तो तुम्हारे ब्याहने योग्य नही फिर उसके देखने से क्या प्रयोजन।

दुष्यन्त—हे सखा पुरुवंशियो का मन अलीन वस्तु पर कभी नही जाता।

कुडलिया

मुनि दुहिता है नाम को जनी अपसरा माय।
जनतहि जननी छोड़िके गइ बिना पय प्याय॥

---

(४२) मुनि की बेटी तो शकुन्तला नाम ही को है उसकी माता

गई बिना पय प्याय भूमि पर डारि अकेली।
परी डालि तें छूटि आक पै मनहु चमेली॥
मुनि निकले तहँ आय गोद लै लीनी सुहिता।
पाली निकल सहाय नाय याते मुनि दुहिता॥४२॥

माढव्य (हँस कर) जैसे किसी की रुचि छुहारों से हट कर अमली पर लगे तुम रनवास के स्त्री रत्नों को छोड़ उस पर आसक्त हुए हो।

दुष्यन्त—हे सखा जो तू उसे एक वेर देखले तौ फिर ऐसी न कहे।

माढव्य—जब तुम को भी उसके देखने से अचम्भा हुआ है तौ वह निस्सन्देह रूपवती होगी।

दुष्यन्त—(मुसका कर) बहुत क्या कहूँ।

सवैय्या

पहले लिखि चित्र के माहि किधौं वहि प्राण अधार विरंच दयो।
धरि के सुखमा चित कै सबही एक रूप अनूप बनाय लयो॥
जब सोचत हूँ विधि को बल मैं अरु वा तिय की रंग ढंग ठयो।
तब भासति है मन माहिं यही कमला को नयो अवतार भयो॥४३॥

माढव्य—जो ऐसी है तो उससे आगे सब रूपवती निरादर हैं।

दुष्यन्त—मेरे चित्त में ऐसी ही है।

एक अप्सरा थी जो जन्ते ही उसे बन में डाल चली गई दैवयोग से वहाँ कन्व मुनि आ निकले पड़ी देख उनके मन में दया आई गोद में उठा कर आश्रम में ले गए और बेटी की भाँति पाली।

(४३) ब्रह्मा ने पहले चित्र में लिखकर अथवा सब रूपवतियों को ध्यान में लाकर एक मूरत बनाई होगी और फिर उस चित्र अथवा मूरत में जीव डाला होगा इस भाँति शकुन्तला होगी मेरे जान तो वह दूसरी लक्ष्मी है।

सवैय्या

वह तो निरदोषित रूप तिया विन सूंघ्यो मनो कोई फूल नयो।
नवपल्लव के नखहू न लग्यो कोई रत्न किधो जो विध्यो न गयो॥
फल पुन्न को है अखंड किधो मधु है सद कै विन स्वाद लयो।
विधना मति मोहि न जानि परे ताहि चाहत कौन के भाग दयो॥४४॥

माढव्य—तो तुम उसे वेग ब्याह लो तब तो अखंड पुन्न का फल किसी हिंगोट का तेल लगे हुए चिकने सिर वाले जोगी के हाथ पड़ जायगा।

दुष्यन्त—मित्र वह परवश है और उसका पिता घर नहीं है।

माढव्य—भला तुम में उसका अनुराग कैसा जान पड़ा।

दुष्यन्त—सुन तपस्वियों की कन्या स्वभाव की सकुचीली होती हैं तो भी—

दोहा

मेरे सन्मुख होत ही फेरी दीठि सुजान।
फिर काहू मिस तें करी मधुर मधुर मुसकान॥
प्रगट प्रीति नहिं कर सकी अधिक सताई लाज।
तोहू गुप्त रह्यो नहीं मदनदेव को काज॥४५॥

माढव्य—और क्या देखते ही तुम्हारी गोद में आ बैठती।

---

(४४) उसका रूप ऐसा निर्दोषित है जैसे विना सूंघा फूल जैसे विना टूटी नई कोंपल जैसे विना विधा रत्न जैसे विना चक्खा नया मधु जैसे पुन्नों का अखंड फल परन्तु मैं नहीं जानता कि विधाता उसे किस के हाथ लगावेगा।

(४५) कामदेव के प्रेम व्यवहार को लाज की मारी भी छुपा न सकी क्योंकि मेरी ओर से यद्यपि दीठ फेर ली परन्तु किसी मिस से मुसका भी गई।

दुष्यन्त—फिर जब चलने लगी तौ लाज में भी उस सुन्दरी का प्रीति भाव मुझ में दिखाई दिया।

दोहा

चलि अबला कछु दूर लों ठैरि गई मग माहिं।
कहति दाभ कांटो लग्यो यदपि दाभ तहँ नाहिं॥
उरझ्यो काहू रूख मे कहूँ न बलकल चीर।
सुरझावन मिस के तऊ ठिठकी मोरि शरीर॥४६॥

माढव्य—तौ अब यहाँ खाने पीने की सामग्री इकट्ठी कर लो क्योंकि मैं देखता हूँ तुमने तपोवन को उपवन बना लिया।

दुष्यन्त—हे सखा किसी किसी तपस्वी ने मुझे पहचान लिया है अब बिचार तौ किस मिस से फिर आश्रम में जाऊँ।

माढव्य—और क्या मिस चाहिये तुम तौ राजा हो।

दुष्यन्त—राजा हैं तौ क्या।

माढव्य—तपस्वियो से कहो कि बन के अन्न से हमारा छठा भाग लाओ।

दुष्यन्त—हे मूर्ख ये तपस्वी तौ हम को और ही भाग ऐसा देते हैं जिसके आगे रत्नों का ढेर भी तुच्छ है देख—

दोहा

और वर्ण तें लेत नृप सो धन बिनसन जोग।
छटो अंश तप कौ अमर देत जु तपसी लोग॥४७॥

---

(४६) यद्यपि वहाँ दाभ का नाम भी न था तो भी थोड़ी दूर चल कर खड़ी हो गई और कहने लगी कि हाय मेरे पैर में दाभ का काँटा लगा और यद्यपि किसी पेड़ में कपड़ा नहीं उलझा था तौ भी बलकल चीर सुलझाने के मिस मेरी ओर मुख करके ठिठक गई।

(४७) जो कर राजा और वरणों से लेता है वह सब मिट जाता है परन्तु जो आशीर्वाद तपस्वियों से मिलता है वह अजर अमर है।

(नेपथ्य में)—अहा हमारा तौ मनोरथ सिद्ध हो गया।

दुष्यन्त (कान लगा कर)—यह तौ धीर शान्त बोल तपस्वियों का सा है।

[द्वारपाल आता है।

द्वारपाल—स्वामी की जय हो हे देव दो ऋषिकुमार द्वार पर आए हैं।

दुष्यन्त—तुरन्त लाओ।

द्वारपाल—अभी लाता हूँ (बाहर जाता है और ऋषिकुमारों को साथ लिये फिर आता है) इधर आओ इधर आओ।

[दोनों राजा की ओर देखते हैं।

पहला ऋषिकुमार—अहा इस राजा का शरीर यद्यपि जाजुल्यमान है परन्तु हम को फिर भी इस में अत्यन्त विश्वास होता है क्यो न हो यह भी तौ ऋषियो ही की भाँति रहता है।

चौपाई

त्यागि नगर याहू ने दीनो। आश्रम आय बास अब लीनो।
करि पालन परजा अपनी कौ। संचय करत यहू तपहू कौ॥
ऋषि पदवी पावन अति नीकी। पहुँची सुरपुर याहु जती की।
चारन द्वन्द ताहि तहँ गावैं। आगे राज शब्द एक लावैं॥४८॥

दूसरा—हे गौतम क्या यही इन्द्र का सखा दुष्यन्त है।

पहला—हाँ यही है।

---

(४८) यह राजा भी ऋषियों से घाट नहीं क्योंकि इसने नगर छोड़ आश्रम में वास लिया है और अपनी प्रजा का पालन करता है यही इसके लिये तप है इसको स्वर्ग मे चारन लोग अपनी अपनी स्त्रियो सहित ऋषि कह कर गाते हैं केवल राज शब्द आगे रख लेते हैं जिससे राजर्षि नाम हो जाता है।

दूसरा—इसी से।

सीमा श्याम वारिनिधि जाकी। ता भुमि कों भोगत एकाकी।
तौ अचरज यामें कछु नाही। नगर द्वार अरगल सम बाही॥
जाके एक चढ़े धनवा में। दूजे कठिन बज्र मघवा में।
धरत आस सब देव समाजा। असुरन को रन जीतन काजा॥४९॥

दोनो—(राजा के निकट जाकर) महाराज की जय हो।

दुष्यन्त—(आसन से उठ कर) तुम दोनो को प्रणाम है।

दोनों—(फूल भेंट करते हैं) तुम्हारा कल्याण हो।

दुष्यन्त—प्रणाम करके भेट लेता है) क्या आज्ञा है।

दोनो—महाराज आश्रमवासियो ने यह जान कर कि तुम यहीं ठैरे हो कुछ प्रार्थना की है।

दुष्यन्त—क्या कृपा की है।

दोनो—हमारे गुरू कन्व ऋषि यहाँ नहीं हैं इससे राक्षस आकर यज्ञ में विघ्न डालते हैं सो तुम सारथी समेत कुछ रात इस आश्रम को सनाथ करो।

दुष्यन्त—यह तौ मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया।

माढव्य—(सैन देकर) अब तौ मनोकामना पूरी हुई।

दुष्यन्त—(मुसका कर) रैवतक तू सारथी को आज्ञा दे कि रथ लावे और मेरा धनुषबान भी लेता आवे।

द्वारपाल—जो आज्ञा।

[बाहर जाता है।

---

(४९) तो फिर क्या आश्चर्य है कि यह अकेला नगर द्वार की अर्गला समान अपनी लम्बी बाहों से समुद्र पर्यन्त सब पृथ्वी पर राज करता है स्वर्ग में देवता इन्द्र के वज्र और इसी के धनुष से लड़ाई में अपने बैरी दैत्यों पर विजय पाने की आशा रखते हैं।

दोनो—(हर्ष से)

दोहा

चलत लीक पुरखान की करत तिनहि के काज।
उचित तुम्हे यातें यही धर्म्मध्वज महाराज॥
सरनागत दुखियान को दैन अभय कौ दान।
नित कंकन बाँधे रहत पुरवंशी यजमान॥५०॥

दुष्यन्त—(प्रणाम करके) तुम चलो मै भी तुम्हारे पीछे आया।

दोनो—सदा जय रहे। [दोनों जाते हैं।

दुष्यन्त—माढव्य क्या तेरे मन मे भी शकुन्तला देखने की चाह है।

माढव्य—पहले तौ बडी उमग थी परन्तु जब से राक्षसों का नाम सुना तब से नही रहा।

दुष्यन्त—डरता क्यो है हमारे पास रहना।

माढव्य—तौ तुम्हारा चक्र-रक्षित बनूँगा।

(द्वारपाल आता है)

द्वारपाल—महाराज रथ आ गया है और माजी की कुछ आज्ञा लेकर करभक दूत भी नगर से आया है।

दुष्यन्त—(सत्कार करके) क्या माता का पठाया आया है।

द्वारपाल—हाँ प्रभू।

दुष्यन्त—तौ उसे लाओ।

---

(५०) हे राजा तुम अपने पुरखों की रीति पर चलते हो और उन्हीं के से काम करते हो इससे तुमको आश्रम की रक्षा करना ही योग्य है यह बात प्रसिद्ध है कि सरनागतों का दुःख दूर करने को पुरुवंश के लोग सदा कटि बद्ध रहते हैं।

द्वारपाल—जो आज्ञा (बाहर जाता है और फिर करभक समेत ाता है) महाराज इधर हैं सन्मुख जा।

करभक—स्वामी की जय हो देव माजी ने आज्ञा की है कि ाज से चौथे दिन पुत्र पिण्डपालन उपास होगा उस समय म चिरंजीव भी अवश्य आकर हम को प्रसन्न करना।

दुष्यन्त—इधर तो तपस्वियो का काम उधर बड़ो की आज्ञा नमें से कोई उल्लधन योग्य नही है अब क्या करना चाहिये।

माढव्य—(हँस कर)—अब त्रिशकु बन कर यहीं ठैरो*।

दुष्यन्त—इस समय मैं सचमुच व्याकुल हूँ।

दोहा

दूर दूर पै काज द्वै परे एक संग आय।
ऊकन जोग न एक हू इन मे परत लखाय।
याही तें मेरो हियो सोचत भयो अधीर।
मनहु शिला तें रुकि बह्यौ द्वैधा सरिता नीर ॥५१॥

(सोच कर)—हे सखा तुझ से भी तो माजी पुत्र कह कर ोली हैं इस्से तुही नगर को जा और हमारी ओर से माजी । यह कह कर कि हम को तपस्वियो का कारज करना अवश्य तू वही काम कीजो जो पुत्र करता है।

---

*त्रिशकु की कथा प्रसिद्ध है कि वह अयोध्या का राजा था, वशिष्ठ ुनि के वेटे के शाप से चाण्डाल हुआ परन्तु विश्वामित्र ने प्रसन्न हो र उसे देह समेत स्वर्ग भेजना चाहा जब स्वर्ग के समीप पहुँचा देव- ाओं ने नीचे गिरा दिया परन्तु विश्वामित्र ने पृथ्वी पर न आने दिया ाब से वह धरती और स्वर्ग के बीच में अब तक लटकता है।

(५१) दूर दूर पर दो काम करने को हैं और दोनों ही अवश्य हैं स सोच विचार में मेरा मन ऐसा बट रहा है जैसे शिला से टकरा कर दी की धार बट जाती है।

माढव्य—यह तो सब करूँगा परन्तु तुम कहीं ऐसा तो नहीं समझो कि मैं राक्षसो से डर गया।

दुष्यन्त—(मुसका कर) नही नहीं तू तो बड़ा ब्राह्मण है ऐसा हम क्यो समझेंगे।

माढव्य—तो अब मुझे राजा के छोटे भाई की भाँति जाना चाहिये।

दुष्यन्त—हाँ इसीलिये यह सब भीड भी तेरे साथ भेजता हूँ तपोवन से विघ्न का दूर ही रहना अच्छा है।

माडव्य (ऊँचा सिर करके)—तो तो मैं अब युवराज ही हो गया।

दुष्यन्त—(आप ही आप)—यह बड़ा चपल है कहीं हमारी लगन का वृत्तान्त रनवास मे न जा कहे इसलिये इस्से यो कहूँ (माढव्य का हाथ पकडकर प्रगट) हे मित्र मैं केवल ऋषियो का बड़प्पन रखने इस तपोवन मे जाता हूँ तू यह निश्चय जान कि तपस्वी की कन्या शकुन्तला मे मेरी चाह नही है भला देख तो—

कह हम अरु वह तिय कहाँ पली जु हरिनिन संग।
जानति है दुखिया कहा कैसो मदन प्रसंग॥
मै तोसो बाकी कछू करी सखा बतरानि।
सो हाँसी की बात ही सोच न लीजो मानि॥५२॥

माडव्य—सत्य है। [सब जाते है।

दूसरा अंक समाप्त हुआ।

---

(५२) कहाँ हम और कहाँ वह लडकी जो हरिनियों के साथ जन्म से रही है भला वह बन की रहने वाली श्रृङ्गार रस की बातो को क्या जाने मैंने जो तुझसे उसके म द्धे बात कही थी वह केवल मन बहलाने की कहानी थी तू उसे सची मत मानना।

तीसरे अंक का विष्कम्भ

स्थान तपोवन

(ऋत्विज ब्राह्मण का शिष्य हाथ मे कुश लिये आता है ।)

अहा दुष्यन्त बड़ा प्रतापी राजा है जिसके चरन बन में आते ही हमारे सब धर्म्म कार्य्य निर्विघ्न होने लगे ।

दोहा

बान चढावन की कहा करि मुरवी टकार ।
हरत दूर ही ते बिघन मनहु चाप हुँकार ॥५३॥

अब चलूं वेदी पर बिछाने के लिये ये दाभ मुझे ऋत्विज ब्राह्मणो को देने हैं (फिर कर और इधर उधर देख कर) हे प्रियम्वदा तू किस के लिये उसीर का लेप और नालसहित कमल पत्ते लिये जाती है। (कान लगाकर) क्या कहा धूप लगने से शकुन्तला बहुत व्याकुल हो गई है उसके शरीर पर लगाने को ठंडाई लिये जाती हूँ। अच्छा तौ जा बहुत जतन से उपाय करना क्योंकि वह कन्या गुरु कन्व का प्राण है मै भी अभी गौतमी के हाथ यज्ञ मन्त्र का शान्ति जल भेजता हूँ ।

[जाता है ।।

इति विष्कम्भ ।

---

(५३) धनुष पर वाण चढाना तो दूर रहा केवल प्रत्यंचा की फटकार ही से सब विघ्न मिट गए जैसे धनुष की हुंकार अर्थात् घोर ही से बहुधा भय दूर हो जाता है ।

अंक ३

आसक्त मनुष्यों की सी दशा मे दुष्यन्त आता है।

दुष्यन्त—(ऊँची श्वास लेकर)—

दोहा

जानत हूँ तपबल बड़ो अरु परवस वह तीय।
तदपि न वासो हटि सके मेरो व्याकुल हीय॥
फिरत न पीछे नीर ज्यो भूमि निमानी जाय।
सो गति मो मन की भई कीजे कौन उपाय॥५४॥

हे कुसुमायुध तू और चन्द्रमा हम प्रेमीजनो को विश्वास-घाती हो।

शिखरनी

हिमांशू चन्दा सो कुसुमशर तोसो कहत क्यो।
नही साँचे दोऊ इन गुनन मोसे जनन को॥
खरी छोड़े ज्वाला वह किरिन पाला संग धरी।
तुहू वज्राकारी निज समन के बानन करे॥५५॥

हे कन्दर्प तुझे मेरे ऊपर क्यो दया नही आती। (मदनबाधा सी देखता हुआ) तेरे कुसुमबान की अनी ऐसी पैनी क्यो हुई। हाँ जाना।

---

(५४) मैं तप के प्रभाव को जानता हूँ और यह भी जानता हूँ कि शकुन्तला पराये वस है फिर भी मेरा मन उस्से हटता नहीं जैसे नीची धरती में जाकर पानी पीछे नहीं लौटता।

(५५) हे कामदेव तुझे फूल के बानों वाला और चन्द्रमा को शीतल किरणों वाला कहना मुझ सरीके मनुष्यों के लिये असत्य दीखता है क्योंकि तेरे बान तो वज समान कठोर हैं और चन्द्रमा की ठंडी किरणों मे आग भरी है।

दोहा

अग्नि अजो हरकोप को दहकति है तो माहि।
जैसे बड़वा समुद्र में सशय नैकहु नाहि॥
जो हेतु न होतो यही तौ कैसे तू आप।
भसम भयो मोसे जनन देतो ऐतो ताप ॥५६॥

फिर भी

दोहा

मनबाधा यद्यपि करत तू मकरध्वज नित्त।
कल न देत एकहु घरी व्याकुल राखत चित्त॥
तदपि गिनू तेरो यहू बहुत बडो उपकार।
वा मदलोचनि कारने जो तू करत प्रहार ॥५७॥

हे पंचशर मैंने तेरी बहुत स्तुति की परन्तु तू मुझ पर दयालु न हुआ।

शिखरनी

वृथा तोको मैंने वल नियम सौ कर दियो।
कियो मेरो योही सब रतिपती निष्फल गयो॥

---

(५६) महादेव के कोप की अग्नि तुझ मे अब तक दहकती है क्योंकि ऐसा न होता तौ तू तौ भस्म हो चुका था कामी जनो को क्यों इतना ताप दे सकता।

(५७) हे मकरध्वज तू मेरे मन को बाधा तो देता है परन्तु मैं फिर भी तेरा उपकार ही मानता हूँ क्योंकि तू उसी मदलोचनी के कारण मेरे ऊपर बान छोड़ता है।

(५८) यज्ञ मे कामदेव को भाग नहीं मिलता जैसा कि और देवताओं को मिलता है परन्तु कामीजनो के नियम और व्रत कामदेव को पुष्ट करते हैं इसलिये दुष्यन्त कहता है कि हे कामदेव मैंने वृथा ही

अहो सोहे तू लै अब धनुष खचे करन लो।
करे वेभो मेरो हिय शर चलावे जतन सो ॥५८॥

(खेदित सा इधर उधर फिरता है) हाय जब यज्ञ समाप्त होगा ऋषियो से विदा होकर मै कहाँ अपने दुखी जीव को ले जाऊँगा। (गहरी साँस लेकर) प्रिया के दर्शन बिना कोई मुझे धीरज देने वाला नही इसलिये इसी को ढूँढू। (सूरज की ओर देखकर इस कठिन दुपहरी को शकुन्तला कहो मालिनी तट की लता कुजो मे सखियो के साथ बिताती होगी अब वही चलूँ। (फिर कर और देख कर) इन नई लताओ मे होकर प्यारी अभी गई होगी मुझे ऐसा दीखता है क्योकि—

दोहा

जिन डारन ते मम प्रिया लुने फूल अरु पात।
सूख्यो दूध न छत भर्‌यो तिनको अजो लखात ॥५९।

(पवन का लगना प्रकट करके) अहा यह स्थान कैसा सुहावना लगता है।

दोहा

लिये कमलरज गन्धि अरु कन मालिनी तरंग।
आइ पवन लागति भली मदन दहे मम अग ॥६०॥

(फिर कर और नीचे देख कर वेतों से घिरे हुए इसी लता मडल मे प्यारी होगी क्योकि—

नियम करके तुझे पुष्ट किया क्योंकि अब तू मुझी पर कानतक खेंच कर बान चलाता है यह तो उचित नहीं है।

(५६) जिन डालियों से प्यारी ने फूल पत्ते तोड़े हैं उनके अभी कौद नहीं भरे और दूध भी नहीं सूखा।

(६०) यहाँ कमलों मे सुगन्धित और मालिनी की तरगों से शीतल होकर पवन आती है जिस के स्पर्श से मेरी काम की दही देह को सुख होता है।

दोहा

दीखत पंडु रेत मे नए खोज या द्वार।
आगे उठि पाछे धसकि रहे नितम्बन भार ॥६१॥

भला इन वृक्षो में देखूँ तौ। (फिर कर और हर्ष सहित देख कर) अहा अब मेरे नेत्र सफल हुए मनभावती वह फूलो से सजी हुई पटिया पर पौढी है दोनो सखी सेवा में खड़ी हैं। अब हो सो हो इन के मते की बाते सुनूँगा।

[खड़ा होकर देखता है।

दोनों सखियों समेत शकुन्तला दीखती है)

दोनो सखी—(प्यार से पखा झल कर)—हे सखी शकुन्तला हम कमल के पत्तो से ब्यार करती हैं सो तेरे शरीर को अच्छी लगती है कि नहीं।

शकुन्तला—सखियो तुम मेरे ऊपर क्यो पंखा झलती हो।

[दोनों सखी दुखीसी होकर एक दूसरे की ओर देखती हैं।

दुष्यन्त—(आप ही आप)—शकुन्तला तौ बेचैन सी दीखती है (सोच कर) क्या इसे धूप लगी है अथवा बेचैनी का कारण वही है जो मेरे मन मे भासता (अभिलाषा दिखाता हुआ) अब सन्देह को छोड़ूं।

सवैय्या

लगि लेप उसीर उरोज रह्यो कर एक सढोल मृनालवला।
कछु पीड़ित सौ तन है प्रिय कौ कमनीत तऊ जिमि चन्द्रकला ॥

---

(६१) इस कुज के द्वार पर पीले रेत में नये खोज बने हैं जो नितम्बों के बोझ से एड़ी की ओर गहरे और आगे को उठे हुए हैं।

(६२) उसीर (शिवाल) का लेप छाती पर लगा है एक हाथ में कमलनाल का ढीला कगन है और यद्यपि कुछ दुखी सी दीखती है तौ भी इसका शरीर मनोहर है ग्रीष्म की कामदेव की ताप समान होती

मकरध्वज की अरु ग्रीषम की दुहु ताप कहावति तुल्यवला।
परि ग्रीषम त्रास करे न कहूं मनभावन ऐसी नई अवला ॥६२॥

प्रियम्वदा—(हौले अनसूया से)—हे अनसूया जब शकुन्तला की दृष्टि उस राजर्षि पर पड़ी तभी से आसक्त सी हो गई है कहीं वही रोग तो नहीं है।

अनसूया—(हौले प्रियम्वदा से)—मेरे मन मे भी यही शंका होती है। भला इस्से पूछना तो चाहिये (प्रगट) हे सखी तेरी पीडा बहुत बढ़ गइ है इस्से मै तुझ से कुछ पूछा चाहती हूं।

शकुन्तला (सेज से थोडी उठकर —क्या पूछना चाहती है।

अनसूया-सखी मदन व्यौहारो को तो हम क्या जाने परन्तु जैसी दशा लगन लगे मनुष्यो की कहानियो मे सुनी है वैसी तेरी दरसती है तू कह दे तुझे क्या रोग है क्योंकि मरम जाने बिना कोई औषधि भी नहीं कर सकता।

दुष्यन्त (आप ही आप)—अनसूया को भी मेरी ही सी शंका है।

शकुन्तला—(आप ही आप)—मेरी लगन तो बहुत कठिन है इनसे सहज क्योंकर कह सकूंगी।

प्रियम्वदा--हे शकुन्तला यह अच्छा कहती है तू अपने रोग को थोड़ा मत जान दिन पर दिन दुबली होती जाती है अब केवल स्वरूप ही स्वरूप रह गया है।

दुष्यन्त (आप ही आप)--प्रियम्वदा ने सत्य कहा।
आनन छीन कपोल भयो है। उर न उरोज कठोर रह्यो है॥
उदर लंक अधिक दुबराई। झुके कन्ध मुखपै पियराई॥

है परन्तु ग्रीष्म की ताप मे नई स्त्रियो का रूप ऐसा सुन्दर नहीं हो जाता इस्से निश्चय कामदेव की सताई है।

(६३) इस के कपोल दुबले दीखते है उरोजो मे कठापन नहीं रहा

करुना जोग दृगन अति प्यारी। मदन बिथित दीखति यह नारी॥
मनहुं माधवी लता सताई। पातसोख मारुत दुख दाई॥६३॥

शकुन्तला—सखी तुम से न कहूँगी किस्से कहूँगी तुम्हीं को दुख दूँगी।

प्रियम्वदा—प्यारी इसी से तो हम हठ करके पूछती हैं कि हितूजनों के बताने से दुःख घटता है।

दुष्यन्त—(आप ही आप)

सवैया

सुखदुख की साझिनि साथिनियाँ मिलि पूछति है दुखरा तियकौ।
अब देहिगी साँच बताय तिन्हे यह कारन रोग सबै जिय कौ॥
मुहि चात्र सो बारहि बार लख्यो मुख मोरि मनो सुखरा पिय कौ।
अकुलात तऊ धों कहूँगी कहा मिटि धीरज मेरे गयौ हिय कौ॥६४॥

शकुन्तला—हे सखी जब से मेरे नेत्रों के सामने तपोबन का रखवाला वह राजर्षि आया तभी से।

[इतना कह लज्जित होकर चुप रह जाती है

दोनों सखी—कहजा।

शकुन्तला—तब से मेरा मन उसके बस होकर इस दशा को पहुँचा है।

कटि पतली तौ थी ही अब और भी पतली हो गई है मुखपै पीलापन छा गया है कन्धे झुक गये हैं अब इस काम की सताई का शरीर दया के योग्य है परन्तु फिर भी मनोहर है जैसे लू की मारी चमेली का।

(६४) दुख सुख की बटाने वाली सहेली इसके शरीर की बिथा का कारण पूछ रही हैं इन्हें ठीक ठीक बता देगी यद्यपि इसने फिर फिर कर मेरी ओर बड़े प्यार से देखा था तौ भी मुझे धीरज नहीं होता (क्योंकि मैं डरता हूँ कि बिथा का कारण कुछ और ही न बतावे)।

दुष्यन्त (हर्ष से आप ही आप)—जो मै सुना चाहता था सोई सुन लिया।

दोहा

मनसिज ही दीनो इतौ मेरे मन सन्ताप।
ताही ने करिके दया फिर दुख मेट्यो आप॥
ग्रीषम बीतें दिवस ज्यो कारे बादर लाय।
मेटत दुख प्रानीन के पहले देह तपाय॥६५॥

शकुन्तला—जो तुम उचित समझौ तौ ऐसा उपाय करो जिससे वह राजर्षि मुझ पर दया करे नहीं तौ मुझे तिलाञ्जली दो।*

दुष्यन्त—(आप ही आप)—इस बचन से तौ मेरा सब संशय मिट गया।

प्रियम्वदा—(हौले अनसूया से)—हे सखी इसकी प्रेमविथा इतनी बढ़ गई है कि अब उपाय मे विलम्ब न होना चाहिए और जिस पर यह मोहित है वह तौ पुरवंश का भूषण है ही इसलिए अभिलाषा भी इसकी बड़ाई के योग्य है।

अनसूया—तू सच कहती है।

प्रियम्वदा—(प्रगट)—सखी धन्य है तेरा अनुराग क्यों न हो समुद्र को छोड़ महानदी कहाँ जा सकती है और आम के बिना नए पत्तो वाली माधवी को कौन ले सकता है।

---

(६५) कामदेव ने मुझे सन्ताप दिया और उसी ने शकुन्तला को मेरी ओर आसक्त करके मेरा सन्ताप मिटाया जैसे पावस का दिन पहले पशु पक्षियों को व्याकुल करता है फिर काली घटा लाकर सब को सुख देता है।

*तिलाञ्जली दो अर्थात् मरी समझो।

दुष्यन्त—(आप ही आप)—जो विशाखा की तरज्यों चन्द्र-कला की बड़ाई करें तौ क्या अचम्भा है।

अनसूया—फिर क्या उपाय है जिस्से प्यारी का मनोरथ तुरन्त सिद्ध हो और कोई जाने भी नहीं।

प्रियम्वदा—मनोरथ का तुरन्त सिद्ध होना तौ कठिन नहीं है परन्तु उपाय गुप्त रहना कठिन है।

अनसूया—क्योंकर।

प्रियम्वदा—जब से उस राजर्षि ने इसे स्नेह की दृष्टि से देखा है क्या वह रात-रात भर जागने से दुबेल नहीं हो गया है।

दुष्यन्त—(अपना शरीर देखकर)—सच है हो तौ ऐसा ही गया हूँ क्योंकि—

दोहा

निशि निशि आँसू ताप के परत भुजा पै आय।
मानिक या भुजबन्द के फीके भये बनाय॥
बार बार ऊँचो करूँ खिसलि खिसलि यह जात।
मुरवी हू की गूंथि पै नेक नही ठैरात॥६६॥

प्रियम्वदा—(सोच कर)—हे सखी अनसूया मेरे विचार में यह आता है कि इस्से एक प्रीति पत्र लिखाऊं और फूलो में रखकर देवता के प्रसादमिस राजा के पास पहुँचा दूं।

अनसूया—सखी यह उपाय तौ बहुत उत्तम है शकुन्तला क्या कहती है।

---

(६६) रात में जब सिर के नीचे बाँह रखकर सोता हूँ सन्ताप के तचें आसू भुजबन्द पर पड़ते हैं जिस्से भुजबन्द के रत्न फीके हो गये हैं और मैं दुबला इतना हो गया हूँ कि इस आभूषण को बार बार ऊँचा करता हूं परन्तु यह नीचे ही को खिसकता है प्रत्यन्चा की गूँथ पर भी नहीं ठैरता।

शकुन्तला—इसका परिणाम मुझे सोच लेने दो।

प्रियम्वदा—सखी तू सोच कर अपने ऊपर लगता हुआ कोई ललित सा छन्द बना दे।

शकुन्तला—छन्द तो बना दूँगी परन्तु मेरा हृदय काँपता है कि कहीं वह पत्र को लौटा कर मेरा अपमान न कर दे।

दुष्यन्त—(प्रसन्न होकर आप ही आप)—

दोहा

जासो तू शंका करति मतिक अनादर देइ।
अभिलाषी तो दरस को ठाढ़ो लखि किन लेइ॥
कमला मिले कि न मिले ताहि चहत जो कोइ।
पै जाको कमला चहै सो दुरलभ क्यो होइ ॥६७॥

दोनो सखी—हे अपने गुणो की निन्दक भला बता तो ऐसा मूर्ख कौन होगा जो शरीर का ताप मिटाने वाली शरद चाँदनी को रोकने के लिए सिर पर कपड़ा ताने।

शकुन्तला (मुस्का कर)—लो मैं तुम्हारा कहना करती हूँ।

[सोचती है

दुष्यन्त (आप ही आप)—प्यारी को लोचन भर देखने का यह अवसर अच्छा है।

दोहा

छन्द रचित सोचति बदन भृकुटी एक चढ़ाय।
पुलक कपोलन ते रही मो मे प्रीति जनाय ॥ ६८ ॥

---

(६७) जिसकी ओर से तुझे डर है कि कहीं चिट्ठी फेर कर अनादर न कर दे सो तेरे मिलने का अभिलाषी यह खड़ा है। लक्ष्मी चाहे मांगने से न भी मिले परन्तु यह क्या कर हो सकता है कि जिसे लक्ष्मी चाहे वह न मिले।

(६८) छन्द बनाने में एक भौंह उठाये हुये यह प्रेमी मन्द-

शकुन्तला—सखी गीत तौ मैंने बना लिया परन्तु लिखने की सामग्री नहीं है।

प्रियम्वदा—इस शुकोदर समान कोमल कमल के पत्ते पर नखों से लिख दे।

शकुन्तला (पत्ते पर गीत लिख कर)—सखियो सुनो इस छन्द मे अर्थ बना कि न बना।

दोनो सखी—अच्छा बाँच।

शकुन्तला—(बाँचती है)

दोहा

तो मन की जानति नही अहो मीत बेपीर।
पै मो मन को करत नित मनमथ अधिक अधीर॥

सोरठा

लाग्यो तोसो नेह रैन दिना कल ना परे।
काम तपावत देह अभिलाषा तुहि मिलन की ॥६६॥

दुष्यन्त (झटपट आगे बढ़ कर)

केवल तोहि तपावही मदन अहो सुकुमारि।
भस्म करत पै मो हियो तू चित देखि बिचारि॥

लगती है और इसके गदगद कपोलों से मेरी ओर कैसी प्रीति झलक रही है।

(६९) हे मीत मै तेरे मन को तौ जानती नहीं हूँ परन्तु मेरे मन को कामदेव नित्त बेचैन करता है और मेरे शरीर को जो तुझ से मिलने का अभिलाषी है तपाता है।

(७०) हे सुन्दरी तुझे तौ कामदेव सताता ही है पर मुझे भस्म ही किये डालता है जैसे दिन कमोदनी की शोभा को इतना नहीं बिगाड़ता जितना कि चन्द्रमा की शोभा को।

सोरठा

भानु मन्द करदेत केवल गंधि कमोदिनिहि।
पै शशिमंडल स्वेत होन प्रात के दरस तें॥७८॥

[दुष्यन्त का प्रवेश]

दोनों सखी (देखकर हर्ष सहित उठती हैं)—बड़े आनन्द की बात है कि मनोरथ तुरन्त सिद्ध हो गया।

(शकुन्तला आदर देने को उठती है)

दुष्यन्त—रहो रहो मेरे लिए क्यो परिश्रम करती हो।

दोहा

सुमनसेज तें लगि रहे सुन्दरि तेरे गात।
सुरभितहू मिडि के भए मृदुलनाल जलजात॥
खेदित से दीखत खरे कठिन ताप के रोग।
आदर देवे काज ये नाहिं उठन के जोग॥७९॥

अनसूया – अजी इस चटान पै विराजिये जहाँ शकुन्तला बैठी है। [राजा बैठता है शकुन्तला लजाती है

प्रियम्वदा—तुम दोनों को एक दूसरे मे अनुराग तो प्रत्यक्ष है परन्तु फिर भी सखी का प्यार मुझ से कुछ कहलाया चाहता है।

दुष्यन्त – कहना है सो कहो क्योंकि जो बात कहने को मन मे आई हो और कही न जाय वह पीछे दुख देती है।

प्रियम्वदा—प्रजा में जो किसी को कुछ विपत्ति हो उसको राजा दूर करे ऐसा तुम्हारा धर्म्म कहा है।

दुष्यन्त—सत्य है इससे बडा कोई धर्म्म राजा के लिए नहीं है।

---

(७९) तेरा ताप का सताया शरीर पुष्प शय्या से लगा हुआ और कमल की कोमल पंखुरियों से सुगंधित इतना कष्ट सहने योग्य नहीं है।

प्रियम्वदा—हमारी इस प्यारी सखी को कन्दर्प बली ने तुम्हारी लगन में इस दशा को पहुँचा दिया अब तुम्हीं इस योग्य हो कि कृपा करके इस के प्राण रक्खो।

दुष्यन्त—हे सुन्दरी प्रार्थना तौ दोनों ओर समान है परन्तु अनुग्रह सब भाँति तुझी पर है।*

शकुन्तला—(प्रियम्वदा की ओर देख कर)—राजर्षि को क्यो यहाँ बिलमाती हो इन का मन रनवास मे धरा होगा।

दुष्यन्त—हे सुन्दरी।

दोहा

तेरे ही बस मो हियो अरु काहू बस नाहिं।
बसति तुही मदलोचनी मेरे हिय के माहिं॥
जो यातें औरहि कछू शंका उपजी तोहि।
तौ मनमथ बानन हन्यो फेरि हनति तू मोहि।७२॥

अनसूया (हस कर)—हे सज्जन हम सुनती हैं कि राजा बहुत रानियो के प्यारे होते हैं परन्तु तुम हमारी सखी का ऐसा निरबाह करना जिस्से इसके बान्धवों को क्लेश न हो।

दुष्यन्त—हे सुन्दरी अधिक क्या कहूँ।

दोहा

होय बड़े रनवास मम द्वै कुलभूपन नारि।
सागर रसना वसुमती अरु यह सखी तुम्हारि॥७३॥

---

*प्रार्थना दोनों ओर समान है। अर्थात् जैसे तू इसके प्राण रखने को मुझ से कहती है मेरे प्राण रखने को इस्से भी कह।

(७२) मेरा मन तेरे ही बस है और किसी के नहीं और जो तू इसमें कुछ शका करती है तौ मानों कामदेव के बानों से मुझे मारे हुए को फिर मारती है।

(७३) एक रानी मेरी पृथ्वी है दूसरी शकुन्तला होगी इन से ऊपर कोई न होगी।

दोनो सखी—तौ यह हमारी चिन्ता मिटी ।

प्रियम्वदा—(अनसूया को ओर देख कर)—हे अनसूया देख इधर दीठि किये हुए हरिणा का बच्चा कैसा अपनी माँ को ढूंढ़ता फिरता है चलो उसे मिला दें ।

[दोनों चलती हैं

शकुन्तला—सखियो मै अकेली रही जाती हूँ तुम मे से एक तौ यहाँ आओ ।

दोनो सखी (मुसका कर)—अकेली क्यो है जो देसदुनी का रखवाला है सो तौ तेरे पास बैठा है ।

[दोनो जाती हैं

शकुन्तला—क्या दोनो ही गई ।

दुष्यन्त-प्यारी चिन्ता मत कर क्या मै तेरा टहलुआ पास नही हूँ ।

शिखरनी

कहे प्यारी तोपै कमल विजना शीतल झलूँ ।
लगे सीरी सीरी पवन तन कौ आलस मिटे ॥
कहे लैके अंके चरन प्रिय के जावक रचे ।
मलूँ जैसे जैसे सुखद करभोरू तुहि जचे ॥७४॥

शकुन्तला -मै बड़ो का अपराध न लूँगी ।

[उठ कर चलने को होती है

दुष्यन्त—हे सुन्दरी अभी दुपहरी कड़ी है और तेरे शरीर की यह दशा है ।

(७४) हे हाथी की सूँड समान जांघो वाली तू कहे तौ कमल का पत्ता तेरे ऊपर झलूँ जिस्से पसीने सूख कर शरीर ठंढा हो कहे तेरे महावर लगे हुए पैरो को गोद में लेकर हौले मलूँ ।

दोहा

कुसुम सेज तजि धूप मे लैके कोमल गात ।
कहाँ जायगी उर धर जलजातन के पात ॥७५।

[हाथ पकड कर बिठाता है

शकुन्तला—हे पुरुवंशी नीत का पालन करो मदन की सताई हुई भी मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ।

दुष्यन्त—हे कामिनी गुरुजनो का कुछ भय मत कर क्योकि कन्व धर्म्म को जानते है यह बाते सुन कर तुझे दोष न देंगे।

सोरठा

बहुत राजऋषि धीय गईं ब्याहि गन्धर्व विधि ।
हरपि मातु पितु हीय तिनहू को आदर दियो ॥७६॥

शकुन्तला—अचल छोड दो मैं अपनी सखियों से फिर कुछ पूछ आऊँ।

दुष्यन्त—अच्छा छोड़ूंगा।

शकुन्तला—कब।

दुष्यन्त—

दोहा

ज्यो कोमल सद फूलते मधुकर अवसर पाय ।
मन्द मन्द मधु लेत है मन की तपति बुझाय ॥

---

(७५) इस दुपहरी मे सेज छोड कर तू कमल के पतो से छात ढके हुए अपने कोमल शरीर को कहाँ ले जायगी ।

(७६) बहुत से राजऋषियों की बेटी गंधर्व रीति से ब्याही हुई सुनी हैं और यह भी सुना है कि उन के मा बाप ने उन को बुरा नहीं कहा।

(७७) जैसे समय पाकर भौंरा सद फूल से हौले हौले रस लेकर अपनी प्यास बुझाता है ऐसे ही हे सुख देने वाली जब मैं तेरे अछूते होठ के रस मे तृप्त हो लूँगा तब तुझे छोड़ूँगा।

तैसे ही करिलेहुँ जव मैं प्यारी सुखदान।
तेरे अधर अछून को सहज सहज रस पान ॥७०॥

[शकुन्तला का मुख उठाता है और वह बरजती है

(नेपथ्य मे)—हे चकवी रात आ गई अब तू अपने नाह से न्यारी हो।

शकुन्तला (कान लगा कर और सटपटा कर)—हे पौरव निश्चय मेरे शरीर का वृत्तान्त पूछने भगवती गौतमी इधर ही आती है तुम वृक्ष की आड़ मे हो जाओ।

दुष्यन्त—अच्छा यही करूँगा।

[वृक्ष की ओट में छुपता है

(हाथ मे कमडंल लिये गौतमी दोनों सखियों सहित आती है)

दोनो सखी—भगवती इधर आओ इधर आओ।

गौतमी (शकुन्तला के निकट जाकर)—बेटी अभी तेरे शरीर का ताप कुछ घटा कि नही।

शकुन्तला—हाँ कुछ घटा है।

गौतमी—इस कुश के जल से तेरा शरीर निरोग जायगा। (सिर पै पानी के छींटे देती है) हे बेटी अ[illegible] चल कुटी को चलें।

शकुन्तला—(आप ही आप)—हे मन [illegible] सम्मुख आया तब तो तू अभागा व[illegible] के विरह सन्ताप मे तेरी क्या गति[illegible] खड़ी होती है। (प्रगट) हे दुःख हर[illegible] न्यारी होती हूँ परन्तु आशा ग[illegible] तुझे देखूँगी।

दुष्यन्त (पहले स्थान पर जाकर और गहरी श्वास लेकर)— अहा मनोरथ सिद्ध होने मे अनेक विघ्न पड़ते हैं ।

दोहा

बार बार अगुरीन तें लीने होठ दुराय ।
नाहिं नाहिं मीठो बचन बोली मुख मुरकाय ॥
ता छिन मृगनैनी बदन मैं कछु लियो उठाय ।
पै अधरामृत पान को समरथ भयो न हाय ॥७८॥

अब कहाँ जाऊँ इसी लता मडल मे जिसे प्यारी क्रीडा करके छोड़ गई है वही एक आसन जमाऊँगा ।

[चारों ओर देखकर

चौपाई

यह प्यारी की है सिलशय्या । गातन अंकित फूलन मय्या ।
प्रेमपत्र यह है कुम्हिलाता । नखतें लिख्यो कमल के पाता ॥
यह मृनालकंकन है सोई । गिर्यो प्रिया के कर ते जोई ।
इनहिं लखत मैं सकत न त्यागी । सूनिहु बेत कुज दुरभागी ॥७८॥

(नेपथ्य में)—हे राजा ।

---

(७८) अगुलियों से होठ छुपा कर बार बार नहीं नहीं कहती हुई का मुख मैंने उठा तो लिया परन्तु होठ का रस लेने को दाव न पडा ।

(७६) यही प्यारी की फूल बिछी हुई शिला की सेज है यह वह पत्र पडा है जो उसने कमल के पत्ते पर नुह से लिखा था यह उस के हाथ से गिरा हुआ कमलनाल का कंगना है इन सब को देख कर यह अभागी सूनी कुंज भी मुझ से छोड़ी नहीं जाती ।

दोहा

सन्ध्या पूजन होत ही राक्षसगन की छाँह।
परति आय चहुँ ओर तें प्रजुलित वेदिन माँह॥
साँझ समय के मेघ सम असित बरन अरु पीत।
देति त्रास तपसीन को करति महाभयभीत॥८०॥

दुष्यन्त—हे तपस्वियो घबड़ाओ मत मैं आया।

[जाता है

तीसरा अंक समाप्त हुआ।

(८०) साँझ की पूजा का आरम्भ होते ही जलती हुई वेदियों पर राक्षसों की काली पीली छाया पड़ने लगी जैसे सन्ध्या में बादलों की, और यह छाया तपस्वियों को भयावनी लगती है।

चौथे अङ्क का विष्कम्भ

स्थान—तपोवन

(दोनों सखी फूल बीनती हुई आती हैं)

अनसूया—हे प्रियम्वदा शकुन्तला का गन्धर्व ब्याह हुआ और पति भी उसी के समान मिला इससे तौ मेरे मन को आनन्द हुआ परन्तु फिर भी चिन्ता न मिटी।

प्रियम्वदा—क्यों।

अनसूया—इसलिये कि आज वह राजर्षि तपस्वियों का यज्ञ पूरा कराकर अपने नगर को बिदा हुआ है रनवास में पहुँच कर जाने यहाँ के वृत्तान्त की सुध रक्खेगा कि नहीं।

प्रियम्वदा—इसकी कुछ चिन्ता मत कर ऐसे विशेष रूप के लोग स्वभाव के खोटे नहीं होते अब चिन्ता है तौ यह है कि न जाने पिता कन्व इस वृत्तान्त को सुनकर क्या कहेंगे।

अनसूया—मेरे मन में तौ यह भासती है कि वे इस वृत्तान्त से प्रसन्न होंगे।

प्रियम्वदा—क्यों।

अनसूया—इसलिए कि बडों का मुख्य संकल्प यही होता है कि कन्या गुणवान को दी जाय और जो दैव आप ही ऐसा बर मिला दे तौ उनको समझना चाहिए कि सहज ही कृतार्थ हुए।

प्रियम्वदा—सत्य है। (फूलों की टोकरी देखकर) हे सखी जितने फूल पूजा को चाहिए उतने तौ हम बीन चुकीं।

अनसूया—शकुन्तला से सुहागदेवी की पूजा भी तो करानी है।

प्रियम्वदा—अच्छा। [दोनों फूल बिनती हैं

(नेपथ्य में)—यह मैं हूँ मैं।

अनसूया (कान लगा कर)—हे सखी यह तो किसी अतिथि का सा बोल है।

प्रियम्वदा—क्या शकुन्तला कुटी पर नहीं है (आप ही आप) है तो परन्तु आज उसका चित्त ठिकाने नही है।

अनसूया—चलो इतने ही फूल बहुत हैं।

[चलती हैं

(नेपथ्य में)—हे अतिथि का निरादर करने वाली।

चौपाई

तपोधनी मैं जात कहायो। तैं नहि जान्यो सन्मुख आयो॥
जाके ध्यान एकटक लागी। सुधि बुधि तें सबही को त्यागी॥
सो जन युवति भूल तुहि जाई। आवे सुरति न कोटि उपाई॥
जैसे मदमातो नर कोई। प्रथम बात कहि भूल्यो होई।८१॥

प्रियम्वदा—हाय हाय बुरा हुआ किसी तपस्वी का अपराध बेसुधी मे शकुन्तला से बन गया (आगे देख कर) यह तो कोई ऐसा वैसा नहीं महाक्रोधी दुर्वासा ऋषि है जो शाप देकर रिस का भरा डिगमिगाते पैरों बेग बेग जाता है भस्म कर देने की सामर्थ दो ही मे है एक अग्नि मे दूसरे इस ब्राह्मण मे।

---

(८१) मैं तप का धनी कहलाता हूँ परन्तु तैंने मुझे सामने आता हुआ न जाना न मेरा सम्मान किया इसलिये मैं शाप देता हूँ कि जिस के वियोग मे तू बेसुध ध्यान लगाये बैठी है वह तुझे भूल जायगा और बहुत याद दिलाने से भी उसे सुध न आवेगी जैसे उन्मत्त को नहीं आती

अनसूया—हे प्रियम्वदा, तू जा पैरों पड़ कर जैसे बने इसे मना ला तब तक मैं अर्घ जल सजोती हूँ।

प्रियम्वदा—अच्छा।

[जाती है

अनसूया (थोडी दूर चलकर गिर पडती है)—हाय उतावली होकर मैंने फूलों की टोकरी हाथ से गिराई।

[फूल बिनने लगती है

(प्रियम्वदा आती है)

प्रियम्वदा—हे सखी इस महर्षि का स्वभाव बड़ा टेढा है उसे कौन सीधा कर सकता परन्तु मैंने कुछ कर लिया।

अनसूया—इस का थोडा मान जाना भी बहुत है तू यह बतला कि कैसे मनाया।

प्रियम्वदा—जब लौटने को नट गया तब मैंने बिनती की कि हे महापुरुष इस कन्या का पहला ही अपराध है और यह तप के प्रभाव को जानती न थी ऐसा विचार कर इसे क्षमा करो।

अनसूया—फिर क्या हुआ।

प्रियम्वदा—तब बोला कि मेरा बचन झूठा नहीं होता परन्तु सुध दिलाने वाली मुदरी के देखने पर शाप मिट जायगा यह कहकर अन्तर्ध्यान हो गया।

अनसूया—तो अभी कुछ आशा है क्योंकि जब वह राजर्षि चलने को हुआ अपनी मुदरी जिस में उसका नाम खुदा था शकुन्तला की अगुली में सुध के लिये पहना गया वही मुदरी हमारी सखी को इस शाप का सहज उपाय होगी।

प्रियम्वदा—सखी चलो अब देवकारज से निपट आवें। (इधर उधर फिर कर और देख कर) हे अनसूया देख बायें कर पर कपोल धरे प्यारी सखी कैसी चित्र लिखी सा बन रही है। पति के वियोग मे इसे तौ सामने आए हुए की क्या अपनी भी सुध नही है।

अनसूया—हे प्रियम्वदा यह शाप की बात हम ही तुम जानें शकुन्तला को मत सुनाओ क्योकि उसका स्वभाव कोमल बहुत है।

प्रियम्वदा—ऐसा कौन होगा जो नवमल्लिका की लहलही लता पर तत्ता पानी छिडके।

[दोनों जाती हैं

इति विष्कम्भ

अंक ४

स्थान आश्रम का समीप

(कन्व का एक शिष्य सोते से उठकर आता है ।)

शिष्य—महात्मा कन्व अभी परदेश से आए हैं और मुझे आज्ञा दी है कि देख आ रात कितनी रही है इसलिए मैं बाहर जाता हूँ । (इधर उधर फिर कर आकाश की ओर देखता हुआ ।) अहा यह तौ सवेरा हो गया ।

चौपाई

एक ओर प्रभु औषधिराई । अस्ताचल शिखरन कौं जाई ।
दूजी ओर पद्मिनी नायक । निकस्यो अरुण सहित तमघायक ॥
अस्तउदै सिखरावत इनकौ । एक संग द्वै तेजमंडन कौ ।
धीरज धर्म तजैं नर नाही । निज निज संपति बिपतिन माही ॥८२॥

चौपाई

अस्ताचल पहुँच्यो ससि जाई । दई कुमुदनी छवि बिसराई ॥
दृगन देति अब आनन्द नाही । आय रही छवि सुमरन माही ॥

---

(८२) चन्द्रमा और सूरज का भी उदय और अस्त होता है इस्से मनुष्य को चाहिये कि अपनी सम्पत्ति और विपति को अचरज न जाने और अधीर न हो ।

(८३) चन्द्रमा के अस्त होने पर कमोदिनी की शोभा केवल ध्यान में रह गई है अर्थात् देखने में नहीं है परन्तु सुध में है कि ऐसी थी जिन नई स्त्रियों के पति परदेस हैं उन को वियोग का दुख सहना बहुत कठिन है ।

जिन तिरियन के पीतम प्यारे। देस छोड़ि परदेस सिधारे॥
तिन के दुख नहिं जात कहेहू। अबलन पै क्यो जात सहेहू॥८३॥

(अनसूया पट को झटके से उठा कर आती है)

अनसूया (आप ही आप)—यद्यपि मै संसार की बातों मे अजान हूँ। तौ भी इतना मैंने जान लिया कि उस राजा ने शकुन्तला के साथ अनर्थ किया !

शिष्य—अब होम का समय हुआ गुरू जी से चलकर कहना चाहिये। [बाहर जाता है

अनसूया—मै उठी भी तौ क्या करूँगी हाथ पैर तौ कहना ही नही करने अब निर्दई कामदेव का मनोरथ पूरा हुआ जिसने हमारी भोली सखी को एक मिथ्यावादी के वस में डाल इस दशा को पहुँचाया है अथवा यह भूल दुर्वासा के शाप का फल है नहीं तौ क्योकर हो सकता कि वह राजर्षि ऐसे वचन दे कर अब तक सदेशे का पत्र भी न भेजता। अब सुध दिलाने को अँगूठी उस के पास भेजनी पड़ी परन्तु इन दुखिया तप-स्वियों मे किस से कहूँ कि अंगूठी ले जा जो मै यह भी जानती कि शकुन्तला का दोष है तौ भी पिता कन्व से जो अभी तीर्थ करके आए हैं न कह सकती कि शकुन्तला का व्याह राजा दुष्यन्त से हो गया और उसे गर्भ भी है अब क्या करना चाहिए।

(प्रियम्वदा हँसती हुई आती है)

प्रियम्वदा—सखी बेग चल शकुन्तला की बिदा का उप-चार करें।

अनसूया—तू क्या सच कहती है ?

प्रियम्वदा—सुन अभी मैं शकुन्तला से पूछने गई थी कि रात मे चैन से सोई कि नहीं।

अनसूया—तब ।

प्रियम्वदा—वह तौ लाज की मारी सिर झुकाए खड़ी थी इतने में पिता कन्व आए और उसे छाती से लगा कर यह शुभ वचन बोले कि हे पुत्री बड़े मगल की बात है कि आज जब ब्राह्मण ने आहुति दी तब यद्यपि यज्ञ के धुएँ से, उस की दृष्टि धुधली हो रही थी आहुति अग्नि ही में पड़ी । हे बेटी जैसे योग्य शिष्य को विद्या देने से मन को खेद नही होता ऐसे आज मै तुझे बिना खेद तेरे भरता के पास ऋषियो के साथ भेज दूँगा।

अनसूया—हे सखी जो बातें मुनि के पीछे हुई सो उन से किसने कह दी।

प्रियम्वदा—जब मुनि यज्ञ स्थान के निकट पहुँचे तब आकाशवाणी छन्द में कह गई ।

अनसूया (चकित होकर)—क्या कह गई ?

प्रियम्वदा—सखी सुन आकाशवाणी ने यह कहा ।

दोहा

समी गरभ मे अनल ज्यो त्यो तेरो धिय सन्त ।
धारति तेज दियो जु नृप प्रजा हेत दुष्यन्त ॥८४॥

अनसूया (प्रियम्वदा को भेंट कर) हे सखी यह सुन कर तौ मुझे बडा आनन्द हुआ बडा सुख हुआ परन्तु जब सोचती हूँ कि शकुन्तला आज ही जायगी तौ सुख और दुख समान हो जाते हैं ।

प्रियम्वदा—जब सुखी रहेगी इस से हम को भी कुछ शोक न करना चाहिए ।

---

(८४) जैसे शमी (छोंकर) को लकड़ी के भीतर अग्नि रहती है मुनि तेरी लड़की के गर्भ में वह तेज है जो राजा दुष्यन्त ने [illegible] प्रजा का रक्षक उत्पन्न करने को दिया है ।

अनसूया—मैंने इसी दिन को उस नारियल में जो आम के पेड़ पर लटकता है नित नई नागकेसर की माला रक्खी थी तू इसे उतार ले तब तक मैं मृगरोचन और तीर्थ की मिट्टी और दूब मङ्गल उपचार की सामग्री ले आऊँ।

प्रियम्वदा—बहुत अच्छा।

[अनसूया जाती है और प्रियम्वदा माला उतारती है

(नेपथ्य में)—हे गौतमी शारंगरव और शारद्वत मिश्रों से कह दो कि शकुन्तला के पहुँचाने को जाना होगा।

प्रियम्वदा (कान लगा कर)—अनसूया विलम्ब मत कर हस्तिनापुर जाने वाले ऋषि बुलाए जाते हैं।

(अनसूया हाथ में सामग्री लिये आती है।)

अनसूया—आओ सखी हम भी चलें।

[दोनों इधर उधर फिरती हैं

प्रियम्वदा (देख कर)—वह देख शकुन्तला सूरज निकलते ही शिर स्नान करके बैठी है और बहुत सी तपस्विनी हाथ में तंदुल लिये आशीष दे रही हैं चलो हम भी वहीं चलें।

[जाती हैं

(ऊपर कही हुई भाँति शकुन्तला बैठी दीखती है)

एक तपस्विनी (शकुन्तला की ओर देख कर) हे बेटी तू पति से मान पाकर महारानी हो।

दूसरी—तू सूरवीर की माता हो।

तीसरी—तू पति की प्यारी हो।

[आशीर्वाद देकर सब जाती हैं गौतमी रहती है

दोनों सखी (शकुन्तला के निकट जाकर)—तेरा स्नान मङ्गलकारी हो।

शकुन्तला—(आदर से)—सखियो भली आईं यहां बैठो।

दोनो सखी (मङ्गल पात्र हाथ मे लिये हुए बैठती हैं)—सखी तू चलने को उपस्थित हो। आ पहले हम नेगचार का उबटन कर दें।

शकुन्तला—हे प्यारियो तुम्हारे हाथ से फिर सिंगार मिलना मुझे दुर्लभ हो जायगा इसलिए जो कुछ तुम आज मेरे लिए करोगी मैं बहुत करके मानूँगी। [आँसू गिराती है

दोनो सखी—सखी ऐसे मङ्गल समय रोना उचित नहीं है।

[आँसू पोंछ कर वस्त्र पहनाती हैं

प्रियम्वदा—हे सखी तेरे इस सुन्दर अङ्ग को अच्छे अच्छे गहने कपड़े चाहिये थे ये आश्रम के फूल पत्ते तो अनहोते को हैं अच्छे नहीं लगते।

(दो ऋषिकुमार वस्त्राभूषण लिये आते हैं)

दोनों ऋषिकुमार - भगवती को ये वस्त्राभूषण पहनाओ।

[देखकर सब चकित होती हैं

गौतमी—हे पुत्र नारद ! ये कहाँ से आये ?

पहला ऋषिकुमार—पिता कन्व के प्रभाव से।

गौतमी—क्या मन मे बिचारते ही प्राप्त हो गये।

दूसरा ऋषिकुमार—नहीं सुनो जब महात्मा कश्यप की आज्ञा हम को हुई कि शकुन्तला के निमित्त लता वृक्षों से फूल ले आओ तब तुरन्त—

चौपाई

काहू तरवर दीन्ह उतारी। मङ्गलीक ससि सम सितसारी॥
काहू दियो लाख रस सोई। जासो तुरत महावर होई॥

---

(८५) किसी वृक्ष ने श्वेत मङ्गलीक साड़ी दी किसी ने महावर को लाख दी किसी ने वन देवियों के हाथों बहुत प्रकार के गहने दिये और वन देवियो के हाथ पहुँचे तक ऐसे दीखे मानों नई शाखा हैं।

औरन बहुविधि भूपन भीने। बन देविनि के हाथन दीने॥
ने निकसे पहुँचे लौं हाथा। होड़ करत नव साखन साथा॥८५॥

प्रियम्वदा (शकुन्तला को देखकर)—वनदेवियो से वस्त्राभरण मिलना यह सगुन तुझे सासरे मे राजलक्ष्मी का दाता होगा।

[शकुन्तला लजाती है

पहला ऋषिकुमार—हे गौतम! आओ आओ गुरुजी स्नान करके आ गए चलो उनसे वनदेवियो के सत्कार का वृत्तान्त कह दें।

दूसरा—अच्छा।

[दोनों जाते हैं

दोनो सखी—हे सखी हम आभूषणो को क्या जाने परन्तु चित्र विद्या के बल से तेरे अंगो में पहना देगी।

शकुन्तला—मैं तुम्हारी चतुराई जानती हूँ।

[दोनों सिङ्गार करती हैं

कन्व—

(कन्व स्नान किये हुए आते हैं)

दोहा।

आज शकुन्तला जायगी मन मेरो अकुलात।
रुकि आँसू गदगद गिरा आँखिन कछु न लखात॥
मोसे बनवासीन जो इतौ सतावत मोह।
तौ गेही कैसे सहे दुहिता प्रथम बिछोह॥८६॥

[इधर उधर टहलते हैं

---

(८६) आज शकुन्तला जायगी इस से मेरा मन बहुत उदास है गले मे बात नहीं निकलती और आँखों मे धुँधला दीखता है जब मुझ सरीके तपस्वियों को भी बेटी का पहला वियोग इतना दुःख देता है तो गिरिस्तियों की क्या दशा होती होगी।

दोनो सखी—हे शकुन्तला तेरा सिङ्गार हो चुका अब कपड़े का जोड़ा पहन ले।

[शकुन्तला उठकर साड़ी पहनती है

गौतमी—हे पुत्री आनन्द के आँसू भरे नेत्रो से तुझे देखने गुरुजी आते हैं तू इन्हे आदर से ले।

शकुन्तला (उठकर लज्जा से)—पिता मैं नमस्कार करती हूँ।

कन्व—हे बेटी—

दोहा

तू पति की आदरवती हूजो ता घर जाय।
जैसे सरमिष्ठा भई नृप ययाति वर पाय॥

सोरठा।

छत्रपती पुरु नाम जैसो सुत वाने जन्यो।
चक्रवर्ती अभिराम तेसो ही जनियो तुहू ॥८७॥

गौतमी—हे महात्मा यह तो आशीर्वाद क्या है बरदान है।

कन्व—आ बेटी तुरन्त आहुति दी हुई अग्नियो की प्रदक्षिणा कर ले। [सब प्रदक्षिणा करती हैं

शिखरनी

चहूँघा वेदी के विधिवत रची हैं अगिनि ये।
बिछीं दर्भा नेरे अरु प्रजुल सोहैं समदि ले॥

---

(८७) जैसे राजा ययाति की रानी होकर शरमिष्ठा ने आदर पाया तैसे तू भी पति मे आदर पावेगी जैसे सरमिष्टा ने छत्रपती बेटा पुरु जना ऐसे तू भी चक्रवती बेटा जनेगी।

(८८) यही यज्ञ की अग्नियाँ जो वेदी के चारों ओर रक्खी हैं और जिन के आस पास दाभ बिछी है यही अग्नियाँ जो समिद से प्रजुलित हैं और जो हव्य की सुगन्धि से पापों का नाश करती हैं मुझे पवित्र करें।

नसावें प्रानी के अघ हविरगन्धी धुवन तें ।
यहीं ज्वाला तेरे दुरित सब बेटी परिहरें ॥८८॥

अब पुत्री तू शुभ घडी मे बिदा हो (चारो ओर देखकर) संग जाने वाले मिश्र कहाँ है।

(शारङ्ग और शारद्वत आते हैं।)

शिष्य—मुनि जी हम ये हैं।

कन्व—अपनी बहन को गैल बताओ।

शारङ्गरव—आओ भगवती इधर आओ। [सब चलते हैं

कन्व—हे तपोवन के सहवासी वृक्षों—

दोहा

पाछे पीवति नीर जो पहले तुम को प्याय।
फूल पात तोरति नहि गहनेहू के चाय॥
जब तुम फूलन के दिवस आवत हैं सुखदान।
फूली अंग समाति नहिं उत्सव करति महान॥
सो यह जाति शकुन्तला आज पिया के गेह।
आज्ञा देहु पयान की तुम सब सहित सनेह॥८९॥

[कोयल का बोल जता कर

यह देखो—

दोहा

आज्ञा देत पयान की, ये तरवर बनराय।
वनवासिन के बन्धुजन, कोयल शब्द सुनाय॥९०॥

---

(८९) हे वृक्षो जो शकुन्तला तुम्हे सींचे बिना जल नहीं पीती थी जो गहना बनाने को भी तुम्हारे फूल पत्ते नहीं तोडती थी जो तुम्हारे फूलने के दिनो बडा उत्सव मानती थी सो आज सुसराल जाती है तुम सब इसे प्रीति सहित बिदा करो।

(९०) वनवासियों के प्यारे ये वृक्ष शकुन्तला को कोयल के मुख से ससुराल जाने की आज्ञा देते हैं।

(नेपथ्य में)—

चौपाई

पथ होय याको सुखकारी । पवन मन्द अरु अभिमतचारी ॥
ठौर ठौर सरिता सर आवें । हरित कमलिनी छाय सुहावें ॥
तरवर शीतल छाँह घनेरे । मेटनहार ताप रवि केरे ॥
मृदुल भूमि पग पग सुखदाई । मनहु कमल रज दीन्ह बिछाई ॥९१॥

(सब कान लगा कर अचम्भे से सुनते हैं)

गौतमी—हे पुत्री ! तेरी हितकारिन तपोवन की देवियाँ तुझे आशीर्वाद देती हैं तू भी इनको प्रणाम कर ।

शकुन्तला (नमस्कार करके प्रियम्वदा से हौले हौले)—हे प्रियम्वदा ! आर्यपुत्र से फिर मिलने का तो मुझे बडा चाव है परन्तु आश्रम को छोड़ते हुए दुःख के मारे पाँव आगे नही पडते ।

प्रियम्वदा—अकेली तुझी को दुःख नहीं है ज्यो ज्यो तेरे बियोग का समय निकट आता है तपोवन भी उदास सा दीखता है ।

दोहा

लेत न मुख में घास मृग मोर तजत नृत जात ।
आँसू जिमि डारत लता पीरे पीरे पात ॥९२॥

शकुन्तला—(सुध करती हुई सी)—पिता मैं इस माधवी लता से भी मिल लूँ इस मे मेरा बहन का सा स्नेह है ।

---

(९१) इसका मार्ग सुखकारी हो ठौर ठौर हरी कमलनियों से छाये हुये ताल और नदी आवें घाम मेटने वाले घने घने वृक्ष मिलें और मार्ग ऐसा कोमल हो मानों इस मे कमल के फूलों की रज बिछी है ।

(९२) हरिन चरना और मोर नाचना छोडते जाते हैं और लता पीले पीले पत्ते गिराती हैं मानों आँसू डालती हैं ।

कन्व—बेटी मैं भी जानता हूं तेरा इसमे सहोदर का सा प्यार है। माधवी लता यह है दाहनी ओर।

शकुन्तला—(लता के निकट जाकर)—हे वनज्योत्सना यद्यपि तू आल से लिपट रही है तौ भी इन शाखारूपी बाहो से मुझे मिल ले क्योंकि अब मैं तुझ से दूर जा पडूंगी।

कन्व—

दोहा

जैसो पति तेरे लिये मैं संकल्प्यो आप।
तैसो तै पायो सुता अपने पुन्न-प्रताप॥
मिली भली नवमल्लिका यहू आम संग आय।
आज भयो तुम दुहुन ते मैं निश्चिन्त उपाय।६३॥

हे बेटी विलम्ब मत कर अब बिदा हो।

शकुन्तला (दोनों सखियों से)—हे सखियो इसे मैं तुम्हारे हाथ सोंपती हूँ।

दोनो सखी (आँसू गिराती हैं)—हमे किस के हाथ सोंपती है।

कन्व—हे अनसूया अब रोना त्यागो तुम्हे तौ चाहिये कि शकुन्तला को धीरज बँधाओ।

[सब चलते है

शकुन्तला—हे पिता जब यह कुटी के निकट चरने वाली ग्याभन हरिनी क्षेम कुशल से जने तुम किसी के हाथों यह मंगल समाचार मुझे कहला भेजना भूल मत जाना।

कन्व—अच्छा न भूलूंगा।

---

(६३) जैसा पति तेरे लिये मैंने अपने मन में विचारा था वैसा ही तैने अपने पुन्नों ने पा लिया और इस चमेली को भी अच्छा आम का वृक्ष मिल गया अब तुम दोनों से मैं निश्चिन्त हुआ।

शकुन्तला (कुछ चल कर और फिर कर)—यह कौन है जो मेरा अञ्चल नहीं छोड़ता है।

[पीछे फिर कर देखती है

कन्व—

सवैया

कहुँ दाभन तें मुख जाको छिद्यौ जब तू दुहिता लखि पावतही।
अपने करतें तिन घावन पै तुही तेल हिंगोट लगावत ही।
जिहि पालन के हित धान समा नित मूठहि मूठ खवावतही।
मृगछौना सो क्यो पग तेरे तजे जाहि पूत लौ लाड लडावतही ॥९४॥

शकुन्तला—अरे छौना मुझ सहवास छोडती हुई के पीछे तू क्यो आता है तेरी माँ तुझे जनते ही छोड मरी थी तब मैंने तेरा पालन किया अब मेरे पीछे पिता जी तुझे पालेंगे तू लौट जा।

[आँसू डालती हुई चलती है

कन्व—

दोहा

दृढ़ करि आँसू रोकि तू आगे देखन हेत।
उन्नत बरुनी दृगन ये काम देन नहिं देत ॥
ऊँची-नीची भूमि मे गिरे न ठोकर खाय।
सावधान पग दीजिये या मारग मे आय ॥९५॥

---

(९४) जिसका मुँह दाभ से चिरा हुआ देख कर घावों पर तू अपने हाथ हिंगोट का तेल लगाती थी जिसे तैने समा के चावल खिला खिला कर पाला है और अपने बेटे की भाँति लड्याया है सो इस समय तेरे पैर क्योंकर छोड़ेगा।

(९५) धीरज बाँध कर आँसुओं को रोक ये तेरी उठी हुई बरुनियों वाली आँख को देखने नहीं देते वहाँ भूमि ऊँची नीची है ऐसा न हो

शारङ्गरव–हे महात्मा सुनते है कि प्यारे जनो को पहुँचाने वहीं तक जाना चाहिये जहाँ तक जलाशय न मिले अब यह सरोवर का तट आ गया आप हमे सीख देकर आश्रम को सिधारो ।

(सब पेड़ के नीचे ठहरते है)

कन्व (आप ही आप) उस राजा दुष्यन्त के योग्य क्या सन्देशा है जो मै भेजूं । [सोचता है

शकुन्तला (सखी से हौले हौले)—हे सखी देख चकवी कमल के पत्तो मे छुपे हुए प्यारे चकवे को देखे बिना आतुर हो कर कहती है कि मै अभागी हू ।

अनसूया—ऐसा मत कह ।

दोहा

दुख की भारी निशि यह काटति बिन पिय पास ।
मन्द करति कछु विरह दुख फेर मिलन की आस ॥६६॥

कन्व--हे शारङ्गरव शकुन्तला को आगे करके तू हमारी ओर से उस राजा से यो कहना ।

शारङ्गरव—जो आज्ञा ।

कन्व—

चौपाई

जानि भले हमको तपधारी । अपनीहू कुल उच्च विचारी ॥
अरु जो बन्धु उपाय बिनाही । भई प्रीति याकी तो माही ॥

कि ठोकर खाकर गिरे ।

(६६) विरह की भारी रात को यह चकवी भी पति के बिना अकेली काटती है क्योंकि पति मिलने की आशा ही विरह के दुःख को मन्दा करती है ।

(६७) हे राजा त हम को तपोधनी और अपने को राजवंशी जान कर और जो प्रीति तुम्हारी और शकुन्तला की आप ही आप हुई उसे

उचित होइ तोको नरनाहू। सब रानिन सम राखे याहू॥
और जू अधिक भागिबस भोगू। बधू बन्धुजन कहन न जोगू॥६७॥

शारङ्गरव—यह सदेशा मैंने भली भाँति गाँठ बाँध लिया है।

कन्व—बेटी अब तुझे भी कुछ सीख दूंगा क्योंकि बनवासी होकर भी हम लोग लौकिक व्यवहारो को जानते हैं।

शारङ्गरव—विद्वान पुरुषो से क्या छुपा है।

कन्व—बेटी जब तू यहाँ से जाकर पतिकुल मे पहुँचे तब—

चौपाई

शुश्रूषा गुरुजन की कीजो। सखीभाव सौतिन मे लीजो।
भरता यद्यपि करे अपमाना। कुपित होइ गहियो जिन माना॥
मिठभाषिन दासिन संग रहियो। बड़े भागि पै गर्व न लहियो॥
या बिधि तिय गेहिनि पद पावे। उलटी चलि कुलदोष कहावें॥६८॥

कहो गौतमी यह शिक्षा कैसी है।

गौतमी—कुल बधुओ के लिये यह उपदेश बहुत श्रेष्ठ है। पुत्री इसे ध्यान मे रखियो।

कन्व—बेटी आ मुझ से और अपनी सखियो से मिल ले।

शकुन्तला—हे पिता क्या प्रियम्वदा अनसूया यहीं से लौट जॉयगी।

सोच कर इस लडकी को सब रानियों के समान रखना हमारा इतना ही कहना है इससे अधिक जो कुछ हो इस के भाग्य के आधीन है हमारे कहने योग्य नहीं है।

(६८) सुसराल में जाकर बड़े बूढ़ों का आदर सत्कार करियो सौतों में ईर्षाभाव मत रखियो किन्तु सहेलीभाव रखियो तेरा पति कदाचित रिस भी हो जाय तो भी तू मान करके कडा वचन मत बोलियो दासियों से मिठबोली हूजियो और इस बात का अभिमान मत करियो कि मै बड़े राजा की रानी हू जो बधू इसे भाँति चलती हैं अच्छी गृहस्थिन कहलाती हैं और जो इससे उल्टी रीति चलती हैं सो कुल का दूषन बनती हैं।

कन्व—बेटी जब तक ये क्वारी है इन का नगर मे जाना योग्य नहीं है गौतमी तेरे सग जायगी।

शकुन्तला (कन्व से भेंट कर)—अब मै पिता की गोद से अलग होकर मलयगिरि से न्यारी की हुई चन्दन शाखा की भाँति परदेस में कैसे जीऊँगी।

कन्व—पुत्री ऐसी विकल क्यो होती है।

सवैय्या।

जब कन्त कुलीन बड़े यशवत की जाय के नारि कहाय है तू॥
अति वैभव के नित कामन ते छिनहू अवकाश न पाय है तू।
दिश पूरब जैसे दिनेश जने सुत उत्तम वेगि ही जाय है तू।
तब मोते बिछोह भए की विथा मन मे नहि नेकहु लाय है तू॥६६॥

(शकुन्तला पिता के पैरो पर गिरती है)

कन्व—मेरे आशिर्वाद से तेरी मनोकामना पूरी होगी।

शकुन्तला—(दोनों सखियो के पास जाकर)—आओ सखियं दोनो एक ही सग मुझे भेट लो।

दोनो सखी (भेट कर)—हे सखी कदाचित राजा तुझे भूल गया हो तो यह मुदरी जिस पर उसका नाम खुदा है दिखा दीजो।

शकुन्तला—तुम्हारे इस सन्देह ने तो मुझे कपा दिया।

दोनो सखी—कुछ डरने की बात नही है अतिस्नेह मे बुरी शका होती ही है।

शारङ्गरव—अब दिन पहर से अधिक चढ गया चलो वेग बिदा हो।

---

(६६) जब तू बड़े राजा की रानी होकर घर के कामों से अवकाश न पावेगी और पुत्र भी थोड़े ही दिनों में तू ऐसा जान लेगी जैसा कि पूरब की दिशा सूरज को जनती है तब तू मुझ से अलग होने का दुख भूल जायगी।

शकुन्तला (आश्रम की ओर मुख करके खड़ी है)—हे पिता तपोवन के दर्शन फिर कब कराओगे।

कन्व—बेटी सुन—

चौपाई

बनितिय बहुत दिवस भूपति की। सौतिनचारकौन बसुमति की॥
करिके व्याह सुवन समरथ कौ। मारग रुके न जाके रथ कौ॥
दैके ताहि कुटुम कौ भारा। तजि के राजकाज व्यवहारा॥
पति तेरो तुहि संग लै ऐहै। यह आश्रम तब तू पग दैहै॥१००॥

गौतमी—बेटी अब चलने का मुहूर्त्त बीता जाता है पिता को जाने दे। मुनिजी तुम जाओ यह तौ बेर बेर ऐसे ही कहती रहेगी।

कन्व—हे बेटी मेरे तप के काम मे विघ्न पडता है।

शकुन्तला (पिता से फिर मिल कर)—हे पिता! मेरे लिये बहुत शोक मत करना क्योंकि तुम्हारा तपस्या-पीड़ित दुर्बल शरीर है।

कन्व—(गहरी श्वास लेकर)—

दोहा

तैं आगे बोए सुता पूजा हित नीवार।
सो उपजे हैं आय ये परन कुटी के द्वार॥

---

(१००) पृथ्वी भी राजा की पत्नी होती है इसलिए महर्षि कहता है कि हे बेटी जब तू बहुत दिन तक राजा की रानी अर्थात् पृथ्वी की सौत बन कर रह लेगी और अपने शूर वीर बेटे का जिसके रथ का कोई रोकने वाला न होगा ब्याह कर लेगी तब तेरा भरता बेटे को राज सौंप कर तुझ सहित इस आश्रम मे आवेगा।

(१०१) हे बेटी! जब तक कुटी द्वार पर बोए हुए धान खड़े हैं उन्हें देख देख मेरा शोक क्योंकर शान्त होगा।

इन्हें लखन कैसे सकूं अपनी बिथा मिटाय।
तो बिछुरन तें जो भई मेरे हिय में आय ॥१०१॥

अब जा तेरा मारग सुखकारी हो।

[शकुन्तला साथियों समेत चलती है

दोनों सखी (शकुन्तला की ओर देखकर)—हाय हाय अब बन के वृक्षों ने शकुन्तला को दुरा लिया।

कन्व (श्वास लेकर)—हे अनसूया तुम्हारी सहेली गई अब तुम शोक छोड़ मेरे पीछे पीछे चली आओ।

दोनो सखी—हे पिता शकुन्तला बिना तो तपोवन सूना सा लगता है हम इसमें कैसे चलें।

कन्व—ठीक है प्रीति में ऐसा ही दीखता है। (ध्यान करता हुआ) शकुन्तला को ससुराल भेज कर अब मैं निश्चिन्त हुआ।

सोरठा

पर घर की धन धीय, पठै ताहि घर पीय के।
आज विमल मम हीय, फेरि धरोहरि जिमि दई ॥१०२॥

चौथा अङ्क समाप्त हुआ

(१०२) बेटी पराए घर का धन कहलाती है सो आज शकुन्तला को ससुराल भेज कर मैं ऐसा निश्चिन्त हुआ हूं जैसे कोई किसी की धरोहर फेर कर होता है।

अंक ५

स्थान-राजभवन

(राजा आसन पर बैठा है, माढव्य पास खड़ा है।)

माढव्य (कान लगा कर)—मित्र संगीत शाला की ओर कान लगाओ देखो कैसा मधुर आलाप सुनाई देता है मेरे जाने तो रानी हंसपदिका गाने का अभ्यास कर रही है।

दुष्यन्त—अरे चुप रह सुनने दे।

(नेपथ्य में राग होता है।)

कालंगड़ा इकताला

भ्रमर तुम मधु के चाखनहार।
आम की रसभरी मृदुल मंजरी तासों प्रीति अपार।
रहसि रहसि नित रस लैबे को धावत हे करि नेम।
क्यों कल आइ कमल बसेरे कित भूले प्यारी को प्रेम॥१०३॥

दुष्यन्त—अहा कैसा प्रीति उपजाने वाला गीत है।

माढव्य—तुमने इन पदों का अर्थ भी समझा।

दुष्यन्त—(मुसका कर) हाँ समझा पहले मैं रानी हंसपदिका [में] आसक्त था अब वसुमती में मेरा स्नेह है इसलिए मुझे [उ]लहना देती है। मित्र माढव्य! तू जा हमारी ओर से रानी [हं]सपदिका से कह दे कि हे रानी! हम इसी उलाहने के योग्य हैं।

माढव्य—जो आज्ञा महाराज की (उठता है)। हे मित्र! [ऐ]से अप्सरा के हाथ से तपस्वी का छुटकारा नहीं होता आज

---

(१०३) हे नए मधु के लोभी भौंरे! तू तो आम की मञ्जरी को [नि]त्य चुम्बन करने आता था अब कमल में बसते ही क्यों उसे ऐसा भूल गया।

मेरा भी न बनेगा वह रानी चोटी पकड़वा कर मुझे पराए हाथो से पिटवाएगी।

दुष्यन्त—जा चतुराई की रीति से उसे समझा देना।

माडव्य—जाने क्या गति होगी। [जाता है

दुष्यन्त—(आप ही आप)—यद्यपि मुझे किसी स्नेही का वियोग नही है तौ भी गीत के सुनते ही चित्त को आप से आप उदासी हो आई है। इसका क्या हेतु है यह हो तौ हो कि—

दोहा

लखि के सुन्दर वस्तु अरु मधुर गीत सुनि कोइ।
सुखिया जनहू के हिये उत्कन्ठा यदि होइ॥
कारन ताको जनिये सुधि प्रगटी है आय।
जन्मान्तर के सखन की जो मन रही समाय॥१०४॥

कंचुकी—अहा अब मै इस दशा को पहुँचा हूँ।

[व्याकुल सा होकर बैठता है

(कञ्चुकी आता है)

कंचुकी—अहा अब मै इस दशा को पहुँचा हूँ।

चौपाई

रीति जानि अपनी पदवी की। परम्परा मानी सब ही की॥
लकुट लई मैने जो आगे। राज गेह रच्छा हित लागे॥
तब तें काल जु बहुत बिनायो। आय बुढ़ापो सो तन छायो॥
डिगमिगात पग चलन दुखारो। यही लकुट अब देति सहारो॥१०५॥

(१०४) अच्छी वस्तु देख कर अथवा अच्छा राग सुन कर जो सुखी मनुष्य के मन मे उदासी आ जाय तो इसका कारण यह जानना चाहिए कि बिना जाने पूर्व जन्म के सुहृदो की सुधि आई है।

(१०५) यही लाठी जो पहले मैने रनवास की द्वारपाली के काम को अवश्य समझ कर ली थी अब बहुत काल बीतने पर मुझ डिगमिगाते पैर वाले के लिए चलने का सहारा बनी है।

यह तौ सच है कि राजा को धर्मकाज करने ही पड़ते है परन्तु महाराज धर्मासन से उठकर अभी गये हैं इसलिए उचित नही है कि मैं उनसे इसी समय कहूँ कि कन्व ऋषि के चेले आये हैं क्योकि इस सदेशे से स्वामी के विश्राम मे विघ्न पड़ेगा। नहीं नहीं जिन के सिर पर प्रजापालन का बोझ है उनको विश्राम कैसा—

दोहा

जोरि तुरंग रथ एकदाँ रवि न लेत विश्राम।
तैसे ही नित पवन को चलवे ही तें काम॥
भूमि भार सिर पै सदाँ धरत शेष हू नाग।
यही रीति राजान की लेत छठो जो भाग॥१०६॥

तौ अब मै इस सदेसे को भुगता ही दूँ। (इधर उधर दे ख कर) महाराज वे बैठे हैं।

दोहा

पालि प्रजा सन्तान सम थकित चित्त जब होइ।
ढूंढत ठॉव इकन्त नृप जहाँ न आवे कोइ॥
सब हाथिन गजराज ज्यो लैके बन के माँह।
घाम लग्यो खोजत फिरत दिन में सीतल छाँह॥१०७॥

[पास जाकर

---

(१०६) सूरज एक ही वेर रथ में घोड़े जोड़ चला है तब से फिर विश्राम नहीं लिया और पवन भी सदा चलती ही रहती है इसी भांति शेषनाग सदा पृथ्वी का बोझ अपने ऊपर रखता है यही रीति राजाओं को चाहिए जो प्रजा की कमाई मे छठा भाग लेते हैं।

(१०७) जब प्रजा की सन्तान की भाँति रक्षा करके राजा थक जाता है एकान्त में विश्राम लेना चाहता है जैसे गजराज हाथियों के यूथ को वन में पहुँचा कर घाम का मारा दिन मे ठण्डी जगह ढूंढता है।

महाराज की जय हो हे स्वामी ! हिमालय की तराई के वनवासी तपस्वी स्त्रियो सहित कन्व मुनि का सदेसा लेकर आए हैं उनके लिए क्या आज्ञा है ।

दुष्यन्त—(आदर से,—क्या कन्व मुनि का सन्देसा लाए है ?

कचुकी—हाँ प्रभू ।

दुष्यन्त—तो सोमरात पुरोहित से कह दे कि इन आश्रम वासियो को वेद की विधि से सत्कार करके अपने साथ लावे मैं भी तब तक तपस्वियो से भेटने योग्य स्थान मे बैठता हूँ ।

कचुकी—जो आज्ञा । [बाहर जाता है ।

दुष्यन्त— (उठकर)—हे प्रतीहारी ! अग्नि स्थान की गैल बता ।

प्रतीहारी—महाराज यह गैल है ।

दुष्यन्त (इधर उधर फिर कर अधिकार के बोझ का दु ख दिखाता हुआ)—अपना अपना मनोरथ पाकर सब प्रसन्न हो जाते हैं परन्तु राजा की कृतार्थता नित्य क्लेश की भरी होती है ।

दोहा

हाथ मनोरथ के लगे अभिलाषा भरि जाति ।
हाथ लगे को राखिबो करत खेद दिन राति ॥
नृपता हू यो जानिये ज्यो छत्री कर माँहि ।
देत कष्ट पहल इतो जेतो मेटति नाहि ॥ १०८॥

(नेपथ्य मे)

दो शार्ङ्गी—महाराज की जय रहे ।

---

(१०८) राज मिल जाने से मन की अभिलाषा तो पूर्ण हो जाती है परन्तु राज का पालना दुःख देता है क्योंकि राजा की पदवी ऐसी है जैसे छत्री कि उसका बोझ थमाने में कष्ट होता है फिर पीछे धूप दूर होने से कुछ सुख मिलता है ।

पहला ढाढी—

कड़खा

निज कारण दुख ना सहो सहो पराए काज।
राजकुलन व्यवहार यह सो पालहु महाराज॥
अपने सिर पै लेत हैं वर्षा शीतरु घाम।
जिमि तरवर हित पथिक के निज तर दे विश्राम॥१०९॥

दूसरा—

छप्पय

दुष्ट जनन बस करन लेत जब दण्ड प्रचण्डहि।
देत दण्ड उन नरन चलत मर्य्याद जो छण्डहि।
करत प्रजा प्रतिपाल कलह के मूल विनासहि।
जिहि निमित्त नृप जन्म धर्म्म सब करत प्रकासहि॥
महाराज दुष्यन्त जू चिरजीवी नित नवल वय।
मेटि विघ्न उत्पात सब प्रज्जहि करि राखो अभय॥

दोहा

धन वैभव तौ और हू वहुत क्षत्रियन माँहि।
पै सुप्रजा हित तुमहि मे अधिक भेद कछु नाहिं॥

---

(१०९) हे राजा! तुम लोक के हित नित्य दुख सहते हो सो तुम्हारा धर्म ही है जैसे वृक्ष औरो को छाया का सुख देकर आप मेह धूप और शीत सहते हैं।

(११०) जब तुम हाथ में दण्ड लेते हो तो कुमार्गियों को नीति की रीति सिखाते हो प्रजा के झगड़े टंटों को मिटाते हो जिस लिये राजा का जन्म है सो तुम सब करते हो इससे तुम सदा प्रजा को सुख देते रहो। धन वैभव तो और भी राजाओं में हैं परन्तु प्रजाहित तुम्ही में अधिक है इसी से तुम सब को भाई बन्धु के समान रखते और सम्मान करते हो किसी को दु.ख नहीं देते।

सोरठा

राखत बन्धु समान याही ते तुम सबन को।
करत मान सन्मान दुःख न काहू देत हो॥११०॥

दुष्यन्त—इन्होने तौ मेरे मलीन मन को फिर हरा कर दिया। [इधर उधर फिरता है

प्रतीहारी—महाराज! अग्निशाला की छत लिपी पुती स्वच्छ पड़ी है और निकट ही होम धेनु बँधी है वही चलिये।

दुष्यन्त (सेवकों के कन्धो पर सहारा लेता हुआ छत पर चढकर बैठता है)—हे प्रतीहारी! कन्व मुनि ने किस निमित्त हमारे पास ऋषि भेजे हैं।

सवैया।

तपसीन के कारज साहि किधो अब आय बड़ो कोइ विघ्न पर्यो।
बनचारी किधो पशु पक्षिन मे काहु दुष्ट नयी उत्पात कर्यो॥
फल फूलिवे वेलि लता वन कौ मति मेरे ही कर्म्मन तें गिर्यो।
इतने मुहि घेरि सदेह रहे इन धीरज मेरे हिये को हर्यो॥१११॥

प्रतीहारी—मेरे जाने तौ ये तपस्वी महाराज के सुकर्म्मो से प्रसन्न हो कर धन्यवाद देने आये हैं।

द्वारपाल—इधर आओ महात्माओ इस मार्ग आओ।

शारङ्गरव—हे शारद्वत—

---

(१११) क्या तपस्वियों के धर्म्म कार्जों मे कुछ विघ्न पड़ा अथवा किसी दुष्ट ने आश्रम के जीवों को सताया अथवा मेरे पापों से लतावृक्षों का फलना फूलना रुक गया जिससे ये तपस्वी रक्षा माँगने आये हैं इन सदेहों से मेरे मन मे बड़ी दुबधा है।

चौपाई

यदपि भूप यह है बड़भागी। थिर मर्याद धर्म अनुरागी ॥
जासु प्रजा में नीचहु कोई। कुमत कुमारग लीन न होई ॥
पै मैं तौ नित रह्यो अकेले। यातें नाहि सुहात सहेलो ॥
मनुष भर्‌यो मुहियहनृपद्वारा। दीखतजिमिघरजरतअगारा ॥११२॥

शारद्वत—सत्य है जब से नगर में धसे हैं यही दशा मेरी भी हो गई है।

दोहा

इन सुख लोभी जनन मे देखत हूँ या भाय।
न्हायो धोयो लखतु ज्यों मैले को दुख पाय ॥
अथवा शुद्ध अशुद्ध को सोवत को जागत।
बँधुआ को जैसे लखत कोई मनुष सुतंत ॥११३॥

शकुन्तला (सगुन देख कर)—हाय ! मेरी दाहिनी आँख क्यो फड़कती है !

गौतमी—दैव कुशल करेगा तेरे भरता के कुलदेव असंगलों को मेटि तुझे सुख देंगे।

पुरोहित (राजा को बतला कर)—हे तपस्वियो वर्णाश्रम के प्रतिपालक श्रीमहाराज आसन से उठ कर तुम्हारी बाट हेरते हैं इनकी ओर देखो।

---

(११२) यह बड़ा प्रतापी राजा है कभी मर्यादा से नहीं डिगता और न इसकी प्रजा में कोई नीच वर्ण भी कुमार्ग चलता है यह सब तौ है परन्तु मुझे एकान्त में रहने का अभ्यास है इसलिए मनुष्यों से भरा हुआ राज आँगन मुझे ऐसा लगता है जैसे आग का भरा हुआ घर।

(११३) ये सुख ढूंढने वाले लोग मुझे ऐसे दीखते हैं जैसे किसी न्हाये धोये को कोई मैला कुचैला अथवा शुद्ध को अशुद्ध अथवा जागते हुये को सोता हुआ अथवा खुले हुए को बंधुआ।

शारङ्गरव-हे ब्राह्मण ! यह तौ बडी बड़ाई की बात है परन्तु हम से पूछो तौ यह इन का धर्म्म ही है—

दोहा

फल आए तरवर झुकै झुकत मेघ जल लाय।
विभो पाय सज्जन झुकै यह परकाजि सुभाय ॥११४॥

प्रतीहारी—महाराज ! ये ऋषि लोग प्रसन्न मुख दीखते हैं इससे मैं जानता हूँ कि कोई कष्ट का काम नही लाए।

दुष्यन्त—(शकुन्तला की ओर देख कर)—तौ यह भगवती कौन है ?

दोहा

घूंघट पट की ओट है को ठाढ़ी यह बाल।
पूरी दीठ परे नही जाको रूप रसाल ॥
यह तपसिन के बीच मे ऐसी परति लखाय।
लई मनो कोपल नई पीरे पातन छाय ॥११०॥

प्रतीहारी—महाराज ! इसका वृत्तान्त जानने को तौ मेरा जी भी बहुत चाहता है। परन्तु मेरी बुद्धि काम नही करती हाँ इतना तौ कहूँगी कि इस भगवती का रूप दर्शन योग्य है।

दुष्यन्त—रहने दे पराई स्त्री का देखना अच्छा नही।

शकुन्तला (आप ही आप अपने हृदय पर हाथ रख कर)—हे हृदय ! तू ऐसा क्यो डरता है आर्य्यपुत्र के प्रेम की सुध करके धीरज धर।

---

(११४) फल लगने पर वृक्ष झुकता है पानी लाकर बादल झुकता है और वैभव पाकरे सज्जन झुकता है परकाजियो का बहुधा यही स्वभाव होता है।

(११५) अचल से मुँह छुपाये हुये यह कौन खड़ी है जिसकी पूरी सुन्दरता दिखलाई नही देती तपस्वियों से घिरी हुई ऐसी लगती है जैसे पुराने पत्तों से ढकी हुई नई कोपल।

पुरोहित (आगे जाकर)—महाराज ! इन तपस्वियो का आदर सत्कार विधिपूर्वक हो चुका अब ये अपने गुरु का कुछ सदेसा लाए हैं सो सुन लीजिये ।

दुष्यन्त—(आदर से)—सुनता हूँ कहने दो ।

दोनों ऋषि (हाथ उठा कर)—महाराज की जय रहे ।

दुष्यन्त– तुम सब को प्रणाम करता हूँ ।

दोनो ऋषि—आप के मनोरथ सिद्ध हो ।

दुष्यन्त—मुनियो का तप तौ निरविघ्न होता है ।

शारङ्गरव—

दोहा

जब लग रखवारे बने तुम जग में महराज ।
क्यों बिगरेंगे मुनिन के धर्म्म परायण काज ॥
ज्योति दिवाकर की रहे जौ लौ मंडल छाय ।
अन्धकार नहिं ह्वै सके प्रगट भूमि पै आय ॥११६॥

दुष्यन्त—तो अब मेरा राजा शब्द यथार्थ हुआ । कहो लोक-हेतकारी कन्व मुनि प्रसन्न हैं ।

शारङ्गरव—महाराज कुशल तौ तपस्वियों के सदा आधीन ही रहती है । गुरु जी ने आप की अनामय पूछ कर यह कहा है ।

दुष्यन्त—क्या आज्ञा की है ।

शारङ्गरव—कि तुम ने मेरी इस कन्या को गान्धर्व रीति से ब्याहि लिया सो ब्याह मैंने प्रसन्नता से अगीकार किया क्योंकि—

---

(११६) जब तक तुम इस पृथ्वी के रखवाले बने हो तब तक तपस्वियों के कामों में कुछ विघ्न नहीं हो सकता जैसे सूरज के रहते अन्धकार भूमण्डल पर नहीं आ सकता ।

दोहा

तुम्हें मुख्य सज्जनन से हम जानत हैं भूप।
शकुन्तला हू है निरी सतकिरिया को रूप॥
ऐसे सम गुण बरबधू बिधि ने दुहू मिलाय।
बहुत दिनन पाछे लियो अपनो दोष मिटाय॥११७॥

अब इस गर्भवती को धर्म्माचरण निमित्त लीजिए।

गौतमी—हे राजा मैं भी कुछ कहा चाहती हूँ परन्तु कहने का अवकाश अभी नहीं मिला।

सोरठा

पूछे याने नाहिं गुरुजन तुमहु न बन्धुजन।
या कारज के माहि करो परस्पर बात अब॥११८॥

शकुन्तला (आप ही आप) देखूं अब आर्य्यपुत्र क्या कहते हैं।

दुष्यन्त—यह क्या स्वांग है।

शकुन्तला (आप ही आप) हे दई! राजा का यह वचन तो निरा अग्नि ही है।

शारङ्गरव—हैं यह क्या है राजा तुम तो लोकाचार की बातें जानते हो।

दोहा

जाय सुहागिनि बसति जो अपने पीहर धाम।
लोग बुरी शंका करैं यद्यपि सती हू बाम॥११९॥

---

(११७) ब्रह्मा को दोष लग रहा है कि अनमिल जोडी मिलाता है परन्तु दुष्यन्त और शकुन्तला के समान गुण जोडी मिलाकर उसने अपना यह दोष बहुत दिन पीछे मिटा लिया।

(११८) आपस में तुम दोनों ने ब्याह कर लिया न तुमने अपने भाई बन्धु पूछे न हमने अपने बडे बूढ़े अब आपस में बात चीत करो।

(११९) जब सुहागिन स्त्री अपने पीहर में जाकर रहती है तो वह कैसी ही पतिव्रता हो लोग बुरी शंका करते ही हैं इसलिए स्त्री के भाई

याते चाहत बन्धुजन रहे सदा पतिगेह।
प्रमुदा नारि सुलच्छिनी बिनहु पिया के नेह॥

दुष्यन्त—क्या मेरा इस भगवती से कभी ब्याह हुआ था।

शकुन्तला (उदास होकर आप ही आप)—अरे मन ! जो तुझे डर था सोई आगे आया।

शारङ्गरव—क्या अपने किये में अरुचि होने से धर्म्म छोड़ना राजा को योग्य है।

दुष्यन्त—यह झूठी कल्पना का प्रश्न क्यों करते हो।

शारङ्गरव (क्रोध से)—जिन को ऐश्वर्य्य का मद होता है उनका चित्त स्थिर नही रहता।

गौतमी—(शकुन्तला से)—हे पुत्री अब थोड़ी बेर को लाज छोड़ दे ला मैं तेरा घूँघट खोल दूँ जिससे तेरा भर्त्ता तुझे पहचान ले। [घूघट खोलती है

दुष्यन्त (शकुन्तला को देख कर आप ही आप)—

बरी कि कबहूँ ना बरी परी हिये उरझेट।
ठाढ़ी रूप ललाम लै सन्मुख मेरे भेंट॥
सकत न याकों लैन सुख नहिं मैं त्यागि सकात।
ओस भरे सद कुन्द को जैसे मधुकर प्रात॥१२०॥

[सोचता हुआ बैठता है

बन्धु यही चाहते हैं कि जवान स्त्री अपने पति के घर रहे तौ भली चाहे पति का प्यार हो चाहे न हो।

(१२०) मेरे मन में यही शंका है कि इस रूपवती से कभी मेरा ब्याह हुआ कि नहीं हुआ इस सन्देह में न तो इसे छोड़ सकता हूँ न ले सकता हूँ जैसे प्रात काल ओस भरे हुए कुन्द के फूल को न त भौंरा छोड़ सकता है न उसका रस ले सकता है।

प्रतीहारी (दुष्यन्त से)—महाराज तौ अपने धर्म्म में सावधान हैं नही तौ सन्मुख आए ऐसे स्त्री रत्न को देख कौन सोच विचार करता है।

शारङ्गरव—हे राजा ऐसे चुपके क्यों हो रहे हो।

दुष्यन्त—हे तपस्वियो मैं बार बार सुध करता हूँ परन्तु स्मरण नही होता कि इस भगवती से कभी मेरा विवाह हुआ और जब इस गर्भवती के लेने से मुझे क्षेत्री* कहलाने का डर है तौ क्योंकर इसे स्वीकार कर सकता हूँ।

शकुन्तला (आप ही आप)—हे दैव! जो मेरे संग ब्याह ही मे सन्देह है तौ अब मेरी बहुत दिन की लगी आशा टूटी।

शारङ्गरव—ऐसा मत कहो—

चौपाई

जासु सुता नृप तै छलि लीनी। यह अनीति जाके सँग कीनी॥
जाने तदपि बुरी नहिं मान्यो। व्याह तुम्हारो शुद्ध प्रमान्यो॥
चुरी वस्तु देके जिमि कोई। चोरहि साह बनावत होई॥
सो न जोग अपमानमुनीसा। देखिविचारितुहीछितिईसा॥१२१॥

शारद्वत—शारङ्गरव अब तुम ठैरो। हे शकुन्तला हम को जो कुछ कहना था कह चुके और उत्तर भी सुन लिया अब तू कुछ कह जिससे इसे प्रतीति हो।

शकुन्तला (आप ही आप)—जो वह स्नेह ही न रहा तौ

---

*जिस मनुष्य की स्त्री दूसरे पुरुष से गर्भवती हो वह क्षेत्री कहलाता है।

(१२१) हे राजा जिस मुनि की कन्या को तुमने छल कर दूषित किया और जिसने कुछ बुरा न मान कर वही कन्या तुम्हे से ब्याहता स्वीकार कर ली और तुम्हारे पास ऐसे भेज दी जैसे कोई चोरी की वस्तु पाकर फिर वही वस्तु चोर को साह बनाने के लिये उसे दे देता है सो क्या ऐसे अपमान के योग्य है जैसा तुम उसके साथ करते हो।

अब सुध दिलाने से क्या प्रयोजन अब तो मुझे लोक के अपवाद से बचने की चिन्ता है (प्रगट) हे आर्यपुत्र ! (आधा कह कर रुक जाती है) और जो ब्याह ही में सन्देह है तो यह शब्द अनुचित है। हे पुरुवंशी ! तुमको योग्य नहीं है कि आगे तपोवन में मुझ सीधे स्वभाव वाली को प्रतिज्ञाओं से फुसला कर अब ऐसे निठुर बचन कहते हो।

दुष्यन्त (कान पर हाँथ रख कर)—पाप से भगवान बचावे।

दोहा

क्यों चाहनि तू पद्मिनी करन पातकी मोहि।
अरु दूषित मम वंश कों मैं पूछत हों तोहि॥
सरिता निज तट तोरि जो रूखनि लेनि खसाय।
नीरि बिगारति आपनो सोभा देति नसाय॥१२२॥

शकुन्तला—जो तुम भूल कर सत्य ही मुझे पर नारी समझे हो तो लो पते के लिये तुम्हारे ही हाथ की मुदरी देती हूँ जिससे तुम्हारी सका मिट जायगी।

दुष्यन्त - अच्छी बात बनाई।

शकुन्तला (अँगुली देख कर)—हाय हाय मुदरी कहाँ गई।

[बड़ी व्याकुलता में गौतमी की ओर देखती है

गौतमी—जब तैंने शुक्रावतार के निकट शचीतीर्थ में जल आचमन किया था तब मुदरी गिर गई होगी।

दुष्यन्त (मुसका कर)—स्त्री की तत्काल बुद्धि यही कहलाती है।

---

(१२२) हे भगवती तू मुझे कलंकी और मेरे कुल को दूषित करना क्यों चाहती है देख जो नदी मरजाद छोड़ अपनी तट खसाती है और निकट के रूखों को गिराती है वह अपना ही पानी गदला करती है और अपनी ही शोभा बिगाड़ती है।

शकुन्तला—यह तौ विधाता ने अपना बल दिखाया परन्तु अभी एक पता और भी दूँगी।

दुष्यन्त—सो भी कह दे मैं सुनूँगा।

शकुन्तला—उस दिन की सुध है जब माधवी कुंज मे तुमने कमल के पत्ते मे जल अपने हाथ मे लिया था।

दुष्यन्त—तब क्या हुआ ?

शकुन्तला—उसी छिन मेरा पाला हुआ दीर्घापांग नाम मृगछौना आ गया तुमने बड़े प्यार से कहा आ छौने पहले तुही पीले। उसने तुम्हे विदेशी जान तुम्हारे हाथ से जल न पिया फिर उसी पत्ते मे मैंने पिलाया तौ पी लिया तब तुमने हँस कर कहा था कि सब कोई अपने ही सदवासी को पत्याता है तुम दोनो एक ही वन के वासी हो।

दुष्यन्त—अपना प्रयोजन साधने वालियो की ऐसी मीठी झूठी बातो से तौ कामीजनो के मन डिगते हैं।

गौतमी - बस राजा ऐसे वचन मत कहो यह कन्या तपोवन में पली है छल छिद्र क्या जाने।

दुष्यन्त—हे वृद्ध तपस्विनी सुनो—

दोहा

बिना सिखाई चतुरई तिरियन की विख्यात।
पसु पछिन हू मे लखी मनुपन की कहा बात॥
लेति पखेरू आन तें कोइलिया पलवाय।
तबलग अपने चेंटुअन जब लग उड़्यो न जाय॥१२३॥

शकुन्तला (क्रोध करके)—हे अनारी ! तू अपना सा कुटिल

---

(१२३) स्त्री जाति में स्वभाव ही से बहुत चतुराई होती है जैसे कोयल को देखो कि जब तक बच्चे उड़ने योग्य न हों तब तक उन्हें और ही पक्षियों से पलवाती है।

हृदय सब का जानता है तुझसा छलिया कौन होगा जो घास फूस के ढके हुए कुए की भाँति धर्म्म का भेष रखता है।

दुष्यन्त (आप ही आप)—इसका कोप बनावट का सा नहीं दीखता और इसी से मेरे मन मे सदेह उपजता है क्योकि—

दोहा।

बिन सुधि आए विथित चित मैं जु कह्यो बहु बार।
मेरो तेरो ना भयो कहुँ इकन्त में प्यार।।
तब अति राते दृगन पै लीनी भोह चढ़ाय।
तोर्‌यो चाप मनोज कौ मनहु कोप मे आय ॥१७४॥

पुरोहित—हे भगवती ! दुष्यन्त के सब काम प्रसिद्ध है परन्तु यह हम ने कभी नहीं सुना कि तेरा व्याह इन के साथ हुआ।

शकुन्तला—मुंह में खाँड़ पेट मे विष ऐसे इस पुरुवंशी के फन्दे मे फँस कर अब मैं निर्लज्ज कहलाई सो ठीक है।

[मुख पर आचल डाल रोती है

शारङ्गरव—जो काम विना बिचारे किया जाय इसी भाँति दुख देता है इसी से कहा है कि—

दोहा

बिन परखे करिये नही कहुँ इकन्त सम्बन्ध।
ऐसे कारज के बिपय निरे न बनिये अन्ध ॥

---

(१२४) जब मुझे उस के साथ व्याह होने की सुध न आई और मैंने वार-बार कहा कि मेरा तेरा एकान्त मे कभी प्रीति व्यवहार नहीं हुआ तब उसने क्रोध में अपनी लाल आँखों पै भोह चढ़ा कर ऐसी मरोड़ी मानों कामदेव के धनुष को तोड़ कर दस टुकड़े कर दिये।

(१२५) जाँचे परखे बिना एकांत में कभी किसी से सम्बन्ध न करना चाहिये क्योंकि एक दूसरे का स्वभाव जाने बिना जो प्रीति हो जाती है वह पीछे बैर ही बनती है।

अनजाने मन के मरम जुगति कहूँ जो प्रीति।
पलटि बैर बनि जाति फिर पाछे याही रीति ॥१२५॥

दुष्यन्त—क्या तुम इसी की बातों की प्रतीति करके मुझे इतने दोष लगाते हो।

शारङ्गरव (अवज्ञा करके)—क्या तुमने यह उलटा वचन नहीं सुना।

दोहा

जन्महि ते जा ने नही जानी छल की रीति।
ताके बचनन की कछू करिये नही प्रतीति॥
मानि लीजिये उनहिं को सतवादी विद्वान।
विद्या लों सीख्यो भलो जिन परवञ्चन ज्ञान ॥१२६॥

दुष्यन्त—हे सत्यवादी! भला यह भी माना कि हमने दूसरों को छलना विद्या की भाँति सीखा है परन्तु कहो तो इस भगवती के छलने से मुझे क्या मिलेगा।

शारङ्गरव—भारी विपत्ति।

दुष्यन्त—नही नही यह बात प्रतीति न की जायगी कि पुरुवंशी अपने वा पराए के लिए विपत्ति मांगते हैं।

शारद्वत—हे शारङ्गरव! इस बात से क्या अर्थ निकलेगा हम तो गुरु का सन्देसा लाए थे सो भुगत चुके अब चलो।

[राजा की ओर देखकर

दोहा

यह तेरी नारी नृपति तू याको भरतार।
राखन छोड़न कौ सबै तोही को अधिकार॥१२७॥

---

(१२६) जिसने जनम से छल का नाम भी नहीं जाना उसकी बात मत मानो और जिन्होंने दूसरो को छलना विद्या की भाँति सीखा है उन्हें सच्चा जानो।

(१२७) हे राजा यह तेरी स्त्री है और तू इसका पति है अब इसे

आओ गौतमी आगे चलो।

[दोनों मिश्र और गौतमी जाते हैं

शकुन्तला—हाय ! इस छलिया ने तौ त्यागी अब क्या तुम भी मुझ दुखिया को छोड़ जाओगे। [उनके पीछे चलती है

गौतमी (खड़ी होकर)—बेटा शारंगरव ! शकुन्तला तौ यह पीछे पीछे रोती आती है अभागी को निरमोही पति ने छोड़ दिया अब क्या करे।

शारंगरव—(क्रोध करके शकुन्तला से)—हे कर्म हीन ! तू क्या स्वतंत्र हुआ चाहती है। [शकुन्तला थरराती है

चौपाई

है जो शकुन्तला तू ऐसी। नरपति तोहि बतावत जैसी॥
तौ जग मे तू पतित कहावे। पिता गेह आवन क्यों पावे॥
अरु जानति है जौ मन माही। दोष कियो मैंने कछु नाही॥
तौ यहि रहति लगै तू नीकी। दासीहू बनि के निज पी की॥१२८॥

अब तू यहीं ठैर हम आश्रम को जाते हैं।

दुष्यन्त—हे तपस्वियो ! क्यों इसे धोखा देते हो देखो—

दोहा

चन्द जगावतु कुमुदनी पद्मिनिही दिन नाथ।
जती पुरुष कहुँ ना गहें परनारी को हाथ॥१२९॥

रखने न रखने का तुझी का अधिकार है।

(१२८) हे शकुन्तला ! जो तू ऐसी है जैसी कि यह राजा बतलाता है तो तू दूषित होकर पिता के घर क्यों आने पावेगी और जो तू अपने मन में सच्ची है तो तुझे पति की दासी बन कर भी यहीं रहना अच्छा है।

(१२९) चन्द्रमा कमोदिनी को ही खिलाता है और सूरज कमलिनी ही को जितेन्द्री पुरुषों की रीति नहीं है कि दूसरे की स्त्री को तके।

शारङ्गरव—सत्य है परन्तु तुम ऐसे हो कि दूसरी का संग पाकर अपने पहले किये को भूलते हो फिर अधर्म्म से डरना कैसा।

दुष्यन्त (पुरोहित से)—मै तुम से इस विषय मे यह पूछता हूँ।

दोहा

कै मै ही बौरो भयो कै झूठी यह नारि।
ऐसे संसय के विषय तुम कछु कहो विचारि॥
किधो दारत्यागी बनूं करि याको अपकार।
कै परनारी परस कौ लेहुँ दोष सिरभार॥१३०॥

पुरोहित (सोच कर)—अब तो यह करना चाहिये।

दुष्यन्त—क्या करना चाहिये सो कृपा करके कहो।

पुरोहित—जब तक इस भगवती के बालक का जन्म हो तब तक यह मेरे घर रहे क्योंकि अच्छे अच्छे ज्योतिषियो ने आगे ही कह रक्खा है कि आपके चक्रवर्ती पुत्र होगा सो कदाचित् इस मुनि कन्या के ऐसा ही पुत्र हो जिसके लक्षण चक्रवर्ती के से पाये जांय तो इसे आदर से रनवास में लेना और न हो तो यह अपने पिता के आश्रम को चली जायगी।

दुष्यन्त—जो तुम बड़ो को अच्छा लगे सो करो।

पुरोहित—(शकुन्तला से)—आ पुत्री मेरे पीछे चली आ।

शकुन्तला—हे धरती! तू मुझे ठौर दे मैं समा जाऊँ।

(रोती हुई पुरोहित के पीछे पीछे तपस्विनयों सहित जाती है और राजा शाप के वश भूला हुआ भी शकुन्तला ही का ध्यान करता है।)

---

(१३०) न जानू मैं ही भूल गया हूँ अथवा यही झूठ कहती है इस सन्देह में हे पुरोहित, तुम कहो दोनों पापों मे कौन सा बड़ा है अपनी स्त्री को त्यागना अथवा पराई को ग्रहण करना।

(नेपथ्य मे)—अहा वड़ा अचम्भा हुआ ?

दुष्यन्त (कान लगा कर)—क्या हुआ ?

(पुरोहित आता है)

पुरोहित (आश्चर्य करके) महाराज ! बड़ी अद्भुत बात हुई।

दुष्यन्त—क्या हुआ ?

पुरोहित—जब यहाँ से कन्व के चेलो की पीठ फिरी—

दोहा

निन्दा अपने भागि की चली करति वह तीय।
रोई बाँह पसारि के भई विथित अति हीय॥

दुष्यन्त—तब क्या हुआ।

पुरोहित—

दोहा

तब अप्सर तीरथ निकट जाने कित तें आय।
ज्योति एक तिय रूप मे लैगइ वाहि उड़ाय॥१३१॥

[सब आश्चर्य करते हैं

दुष्यन्त—मुझे जो बात पहले भास गई थी सोइ हुई अब नमें तर्क करना निष्फल है तुम जाओ विश्राम करो।

पुरोहित—महाराज की जय रहे।

[बाहर जाता है

दुष्यन्त—हे वेत्रवती ! मेरा चित्त व्याकुल हो रहा है तू मुझे शयन स्थान की गैल बता।

---

(१३१) जब वह अपने भाग्य को बुरा कहती हुई चली और व्याकुल होकर हाथ पसार रोई तब अप्सरा तीर्थ के पास किसी ओर से एक ज्योति स्त्री रूप में आकर उसे उड़ा ले गई।

प्रतीहारी—महाराज इस मार्ग आइये ।

दुष्यन्त—(चलता हुआ आप ही आप)—

दोहा

बिन आए सुधि ब्याह की मैं त्यागी मुनि धीय ।
पै होयो मेरो कहन वह साँची है तीय ॥१३२॥

[सब जाते हैं]

पाँचवाँ अङ्क समाप्त हुआ ।

———

(१३२) यद्यपि सुध न आने से मैंने उस मुनिसुता को स्वीकार नहीं किया परन्तु मेरा हृदय कहता है कि उसका कहना सच्चा होगा ।

छठे अंक का प्रवेशक

स्थान—एक गली

(राजा का साला कोतवाल और प्यादे एक मनुष्य को बाँधे हुए लाते हैं।)

पहला प्यादा (बधुए को पीटता हुआ)—अरे कुम्भिलक बतला तो यह अँगूठी तेरे हाथ कहाँ लगी इस पै तो राजा का नाम खुदा है।

कुम्भिलक (काँपता हुआ)—दया करो मैं ऐसा अपराधी नहीं हूँ जैसा तुम समझे हो।

पहला प्यादा—क्या तू कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण है कि सुपात्र जान राजा ने अँगूठी तुझे दक्षिणा में दी हो।

कुम्भिलक—सुनो मैं शुक्रावतार तीर्थ का धीवर हूँ।

दूसरा प्यादा—अरे चोर हम क्या तेरी जात पाँत पूछते हैं।

कोतवाल—हे सूचक इसे अपना सब ब्योरा आद्योपान्त कहने दो बीच में रोको मत।

दोनो प्यादे—जैसे कोतवाल जी कहते हैं वैसे ही कर रे।

कुम्भिलक—मैं तो जलाबशी से मछली पकड़ के अपने कुटुम्ब का पालन करता था।

कोतवाल (हँस कर)—तेरी बहुत अच्छी आजीविका है।

कुम्भिलक—हे स्वामी ऐसा मत कहो।

दोहा

जा जाके कुल को धरम सो नहिं बरजन जोग।
निन्दितहूँ किन होइ वह यो भाषत हैं लोग॥

---

(१३३) जो जिसके कुल का धर्म्म है वही उसे लीन है चाहे भला हो चाहे बुरा क्योंकि पशु मारना यद्यपि निर्दयपन का काम है तो भी

पशु मारन दारुन करम करत बिप्र बलि काज।
देखी जाति दयालुता तिनहू में महाराज ॥१३३॥

कोतवाल—फिर क्या हुआ ?

कुम्भिलक—एक दिन एक रोहू मछली मैंने काटी उसके पेट में यह हीरा जड़ी अँगूठी निकली इसे बेचने को मैं दिखला रहा था तब तक तुमने आ थामा यही इसका ब्योरा है अब जैसा तुम्हारे धर्म्म मे आवे करो चाहो मारो चाहो छोड़ो।

कोतवाल—हे जानुक! इसके शरीर से कच्चे मांस की बास आती है इससे यह निश्चय गोह खाने वाला धीवर है परन्तु अँगूठी मिलने के मद्धे इससे कुछ और भी पूछ ताछ होनी चाहिये चलो राजा के पास चलें।

दोनो प्यादे—बहुत अच्छा। अरे गठकटे चल।

[सब चलते हैं

कोतवाल—हे सूचक! तुम दोनो नगर द्वार के सामने इसकी चौकसी करते रहो मतवाले मत हो जाना तब तक मैं अँगूठी मिलने का ब्योरा सुना कर राजा की आज्ञा ले आऊँ।

दोनो प्यादे—अच्छा जाओ स्वामी को प्रसन्न करो।

[कोतवाल जाता है

पहला प्यादा—हे जानुक कोतवाल जी को बड़ी बेर लगी।

दूसरा प्यादा—राजाओ के पास अवसर ही से जाना होता है

पहला प्यादा—(धीवर को ओर देखकर)—हे जानुक! यह अपराधी सूली पावेगा इसके सिर पर माला रखने को मेरे हाथ खुजाते हैं।*

श्रोत्री (वेदपाठी ब्राह्मण) दयावान हो कर भी इस काम को बलिदान के लिए करते हैं।

*सूली देने के समय अपराधी के गले में फूल माला पहनाई जाती है।

कुम्भिलक—मुझे बिना अपराध क्यो मारना चाहते हो।

दूसरा प्यादा (देखकर)—कोतवाल जी तौ वे हाथ में पत्र लिये आते हैं अरे कुम्भिलक अब तू गिद्धों का भक्षण बनेगा अथवा कुत्तो का मुख देखेगा।

(कोतवाल आता है)

कोतवाल—हे सूचक इस धींवर को छोड दो अँगूठी का भेद खुल गया।

सूचक—जो आज्ञा।

दूसरा प्यादा—यह तौ यमराज के घर से लौट आया।

[बन्धन खोलता है

कुम्भिलक—(कोतवाल को हाथ जोडकर)—कहो स्वामी मेरी आजीविका कैसी है।

कोतवाल—अरे महाराज की आज्ञा है कि अँगूठी का पूरा मोल तुझे मिले कुछ और भी दिया जाय सो यह ले।

[द्रव्य देता है

कुम्भिलक—(हाथ जोड कर और द्रव्य लेकर)—स्वामी ने मुझ पै बड़ी दया की।

सूचक—दया क्यों न की तुझे शूली से उतार हाथी के मस्तक पर बिठा दिया।

जानुक—कोतवाल जी बस पारितोषिक से जान पड़ता है कि अँगूठी बड़े मोल की होगी।

कोतवाल—मेरे जान स्वामी ने अँगूठी का रत्न तौ बड़े मोल का नहीं माना परन्तु उसके देखने से राजा को अपने किसी प्यारे की सुधि आ गई क्योंकि यद्यपि स्वामी का स्वभाव गंभीर है तौ भी अँगूठी देखते ही थोड़ी बेर तक उदास रहे।

सूचक—तौ तुमने राजा का बड़ा काम किया।

जानुक—यों कहो कि इस धीवर का बड़ा काम किया।

[धीवर की ओर ईर्षा से देखता है

कुम्भिलक—रिस मत हो अँगूठी का आधा मोल फूलमाला के पलटे तुम्हे भी दूँगा।

जानुक—तुझे ऐसा ही चाहिये।

कोतवाल—अरे धीवर अब तो तू हमारा बड़ा प्यारा मित्र हुआ चलो कलार की हाट मे मदिरा को प्रथम प्रीति का साक्षी बनावें।

[सब जाते है

इति प्रवेशक

अंक ६

स्थान—राजभवन की फुलवाड़ी

(आकाश से सानुमती अप्सरा विमान में बैठी हुई आती है।)

सानुमती—जब तक सज्जनो के न्हाने का समय है अप्सरा तीर्थ पर हम को बारी बारी से जाना पडता है इस काम से तो मैं निरचू हुई अब चलकर उस राजर्षि का वृत्तान्त देखू क्योकि मेनका के सम्बन्ध से शकुन्तला तो मेरा अंग ही हो गई है और मेनका ही ने बेटी के काम निमित्त मुझे भेजा है। (चारो ओर देखकर) हैं ऋतोत्सव के दिनो मे भी राजभवनो मे क्यो उदासी सी छा रही है। मुझे यह तो सामर्थ्य है कि बिना प्रगट हुए भी सब वृत्तान्त जान लूं परन्तु सखी की आज्ञा माननी चाहिये इसलिये इन उद्यान रखाने वालियो के पास ही अपनी माया के बल से अदृश्य होकर बैठूंगी। [विमान से उतर कर बैठती है

(एक चेरी आम की मजरी को देखती हुई आती है और दूसरी उसके पीछे है।)

पहली चेरी—

दोहा

सरस आम की मंजरी हरित पीत कछु लाल।
हे सर्वस्व बसन्त तू सोभा तुही रसाल॥
प्रथम दरस तेरो भयो मोहि आज ही आय।
बिनवति हो तू हूजियो ऋतु को मगलदाय॥१३४॥

---

(१३४) हे आम की मञ्जरी तेरा रङ्ग कुछ हरा कुछ पीला कुछ लाल है बसन्त की तू ही जीवनमूल और तूही शोभा है आज तेरा प्रथम दर्शन मुझे हुआ इसलिये बिन्ती करती हूँ कि तू इस ऋतु को मङ्गलकारी हूजो।

दूसरी—हे कोकिला तू आप ही आप क्या कह रही है ?

पहली—अरी मधुकरी आम की मंजरी देख कोकिला उन्मत्त होती ही है।

दूसरी (प्रसन्न होकर और निकट जाकर)—क्या प्यारी बसन्त ऋतु आगई।

पहली—हाँ, तेरे मधुर गीत गाने के दिन आ गए।

दूसरी—हे सखी, कामदेव की भेंट को मैं इस वृक्ष से मंजरी लूँगी तू मुझे सहारा देकर उचका दे।

पहली—जो मैं सहारा दूँगी तो भेंट के फल से भी आधा लूँगी।

दूसरी—जो तू यह न कहती तौ क्या आधा फल न मिलता मुझे तुझे तौ विधाता ने एक प्रान दो देह बनाया है (सखी का सहारा लेकर मंजरी तोड़ती है) अहा ! ये आम की कलियाँ अभी खिली नहीं हैं तौ भी जिस ठौर से टूटी हैं कैसी सुहावनी महक देती हैं। [अंजली बना कर मंजरी अर्पण करती है

दोहा

तोहि आम की मंजरी अरपति हों सिर माथ।
महाराज कन्दर्प के धनुष लियो जिन हाथ॥

---

(१३५) हे आम की मञ्जरी मैं तुझे कामदेव पै अर्पण करती हूँ जिस ने अभी धनुष हाथ में लिया है सो तू उसके पाँचों बानों में सब से पैना बान पथिकजनों की स्त्रियों के हृदय छेदने को हूजो कामदेव का नाम पंचशर अर्थात् पाँच बानों वाला और कुसुमशर अर्थात् फूल के बानों वाला है इन पाँच फूलों के नाम भरत ने ये लिखे हैं (१) हर्षन (२) प्रहसन (३) मोहन (४) मूर्च्छन (५) विकर्षन और किसी ग्रन्थकार ने (१) अरविन्द (२) अशोक (३) सरस (४) आम मञ्जरी

तू पाँचन में हूजियो सब तें तीखे बान।
परदेशिन की तियन के छेदन काज पिरान ॥१२५॥

(कंचुकी आता है)

कंचुकी (रिस हो कर)—हे बाउलियो! राजा ने तौ आज्ञा दे दी है कि अब के बरस बसन्तोत्सव न होगा फिर तुम क्यों आम की कलियों को तोड़ती हो?

दोनों (डरती हुई)—अब तौ हमारा अपराध क्षमा करो हमने नहीं जाना था कि राजा ने ऐसी आज्ञा दी है।

कंचुकी—तुमने नहीं जाना बसन्त के वृक्षों ने और उन में बसने वाले पखेरुओं ने भी तौ महाराज की आज्ञा मानी है देखो इसी से—

सवैय्या

यह आय घने दिन तें हैं लगी परि देति पराग न आमकली।
कलियाय कुरेकौ रह्यो विरुला परि लेत नहीं छवि फूलि भली॥
रुकि कंठहि कोकिल कूक रही ऋतु यद्यपि शीत गई है चली।
मति खैंचि निषंग तें बान कछू डर मानि धर्‍यो फिर काम बली॥१२६॥

दोनों—इसमे सन्देह नहीं यह राजर्षि ऐसा ही प्रतापी है।

---

(५) उत्पल और किसी ने (१) चंपक (२) आम मञ्जरी (३) नागकेशर (४) केतक (५) बेल कहे हैं। गीत गोविन्द में इनके नाम ये हैं (१) बधूक (२) मधूक (३) नील कमल (४) तिल (५) कुन्द। कामदेव का धनुष ईख के गन्ने का बना है और प्रतिंचा भौरों की पंक्ति है।

(१२६) आम की कली बहुत दिन से लग रही हैं परन्तु पराग नहीं देती इसी भाँति कुरे का वृक्ष कलियाय तौ रहा है परन्तु फूलता नहीं शिशिर ऋतु बीत गई तौ भी कोयल के कठ से कूक नहीं निकलती मुझे शका है कि कहीं कामदेव ने भी डर के मारे आधा निकाला हुआ बान फिर न निषंग (तरकश) में रख लिया हो।

पहली—अजी थोड़े ही दिन हुए हैं कि महाराज के चरनों में उनके साले मित्रावसु की भेजी हुई हम आई हैं और यहां हमको प्रमदवन की रखवाली का काम मिला है इसलिए यह वृत्तांत हमने पहले नहीं सुना था।

कंचुकी—हुआ सो हुआ फिर ऐसा मत करना।

दोनों—हे सज्जन हमारे मन में यह जानने की लालसा है कि राजा ने क्यों वसन्तोत्सव बरजा है जो हम इसके सुनने योग्य हों तौ कृपा करके बतला दो।

सानुमती (आप ही आप)—मनुष्य को उत्सव सदा प्यारा होता है। इसलिए कोई बड़ा ही कारण होगा जिससे राजा ने ऐसी आज्ञा दी है।

कंचुकी—(आप ही आप)—यह तौ प्रसिद्ध बात है इसके कह देने में क्या दोष है। (प्रगट) क्या शकुन्तला के त्याग की चर्चा तुम्हारे कानों तक नहीं पहुँची।

दोनों—हाँ अँगूठी मिल जाने तक का व्योरा तौ हमने राजा के साले के मुख से सुन लिया है।

कंचुकी—तौ अब मुझे थोड़ा ही कहना रहा सुनो जब महाराज को अपनी अँगूठी देख कर सुध आई तौ तुरन्त कह दिया कि शकुन्तला से एकान्त में मेरा व्याह हुआ था और मैंने उसे वे सुधी में त्यागा। जब से यह सुध आई है तब से स्वामी पछतावे में पड़े हैं।

चौपाई

सुखसामा अब कछु न सुहावे। मंत्री गण न निकट नित आवें॥
जागत जाति राति सब काटी। लेत करोट सेज की पाटी॥

---

(१) आनन्द देने वाली कोई वस्तु राजा को अच्छी नहीं लगती। न अब पहले की भांति मन्त्रियों की भीड़ प्रतिदिन पास आती है

जब रनवास जात बतरावे । सभ्य बचन निज तियन सुनावे ।।
फिर फिर भूल करत नामन में । चुप रह जात लजायौ मन में ।।१३७।।

सानुमती (आप ही आप)—यह बात तौ तुझे प्यारी लगी ।

कचुकी—इसी बिलाप के कारण वसन्तोत्सव बरज दिया गया है ।

दोनों—यह तो उचित ही था ।

(नेपथ्य मे)—इधर आइये उधर आइये ।

कचुकी—(कान लगा कर)—महाराज इधर ही आते है जाओ तुम अपना अपना काम देखो ।

दोनों—अच्छा ।   [दोनों जाती हैं

(राजा बिलापियों के भेष मे आता है और प्रतीहारी और माढव्य साथ है ।)

कचुकी—(राजा की ओर देखकर)—सत्य है तेजस्वी पुरुष सभी अवस्था मे अच्छे लगते हैं हमारे स्वामी यद्यपि उदासी मे हैं तौ भी इनका दर्शन कैसा मनोहर है ।

घनाक्षरी

भूषन उतारे साज मडन के दूर डारे ककन ही एक हाथ बाएं राखि लीनी है । तातीं तातीं श्वासन बिनास्यो रूप होठन

नींद छुट गई है सेज की पट्टिया पर करवट लेते रात कटती है रनवास मे जाकर जो कुछ बात रानियों के साथ करते हैं नाम भूल कर मुख से शकुन्तला ही निकल जाता है तब लजा कर चुप रह जाते हैं ।

(१३८) राजा ने केवल एक कंकन बाये हाथ में रख कर और सब बड़े बड़े गहने उतार डाले हैं और राग रग के साज सब दूर कर दिये हैं तत्तो श्वासों से उनके होठों का रग फीका पड गया है सोच में नींद नहीं आती जागते ही रात बीतती है आंखों मे लाली छा गई है परन्तु तेज के कारण दुबला शरीर भी शोभायमान दीखता है जैसे सान पर चढा हुआ हीरा ।

कौ नीको लाल रंग मारि फीको पारि दीनो है ॥ सोचत गमाई नींद जागत बिताई राति आँखिन में आय के ललाई वास कीनो है। तेज के प्रताप गात कृच्छहू लखात नीको दीपत चढ़ायो सान हीरा जिमी छीनो है ॥१३८॥

सानुमती (राजा की ओर देखकर)—शकुन्तला अपना अनादर हुए पर भी इसके विरह में व्यथित हो रही है सो क्यो न हो यह इसी योग्य है।

दुष्यन्त (बहुत सोचता हुआ इधर उधर फिर कर।)—

दोहा

चेतायो चेत्यो नही मृगनैनी जब आप।
अब चेत्यो यह हत हियो सहन काज सन्ताप ॥१३९॥

सानुमती (आप ही आप)—अहा उस तपस्विनी के बडे भाग हैं।

माढव्य (आप ही आप)—इसको शकुन्तलारूपी व्याधि ने फिर घेरा न जानूँ क्या उपाय होगा।

कंचुकी (दुष्यन्त के पास जाकर)—महाराज की जय हो, हे प्रभू ! मैं प्रेमदवन को भली भाँति देख आया आप चलकर जहाँ इच्छा हो उस आनन्द के स्थान में विश्राम कीजिये।

दुष्यन्त—हे प्रतीहारी तू हमारा नाम लेकर पिशुन मंत्री से कह दे कि बहुत जागने से हम में धर्म्मासन पर बैठने की सामर्थ नहीं रही इसलिये जो कुछ काम काज प्रजा सम्बन्धी हो लिखकर हमारे पास यहीं भेज दे।

प्रतीहारी—जो आज्ञा ! [बाहर जाता है

---

(१३९) जब मेरे इस अभागे मन को शकुन्तला ने बहुत भांति सुध दिलाई तब तो न चेता अब पछतावे का दुःख सहने को चेता है।

दुष्यन्त—वातायन ! तू भी अपने काम पर जा।

कंचुकी—जो आज्ञा महाराज की।　　　　　[बाहर जाता है

माढव्य—तुमने यह जगह तौ भली निर्मक्ष* कर दी अब घाम शीत की मेटने वाली इस प्रमदबन की रमनीक कुज मे मन बहलाओ।

दुष्यन्त—हे माढव्य यह कहनावत कि आपदा छिद्र देखती रहती है सच है क्योंकि—

दोहा

मुनि दुहिता सग व्याह की सुरति नसावनहार।
अब ही मो मन तें टरयो अंधकार भ्रमभार॥
तौ लो मनसिज धनुष लै आयो लगी न बार।
आम मंजरी बांन धरि मोपै करन प्रहार॥१४०॥

माढव्य—नैक ठैरो मनसिज के बानो को अभी लाठी से तोड़े डालता हूँ।

(आम की मजरियों को लाठी उठा कर झूरने को खडा होता है।)

दुष्यन्त (मुसका कर)—हाँ मैंने तेरा ब्रह्म तेज देख लिया बता मित्र अब कहाँ बैठ कर प्यारी की उनहार वाली लताओ से आँख ठण्ढी करूँ।

माढव्य—क्या तुमने दासी चतुरिका को आज्ञा नहीं दी है कि हम इस समय माधवी मडप में मन बहलावेंगे तू जा कर

---

*निर्मक्ष अर्थात् ऐसी निर्मल कि जहा कोई मक्खी भी नहीं।

(१४०) मेरे मन से जिस भ्रम ने शकुन्तला के साथ ब्याह होने की सुध भुला दी सो तौ मिटा ही न था तब तक धनुष पर आम की मंजरी का बान चढा कर कामदेव मुझे मारने आ गया।

वहीं उस पट्टी को ले आ जिसमें मेरे हाथ का खैंचा हुआ भगवती शकुन्तला का चित्र है।

दुष्यन्त—जो ऐसा मनोहर स्थान है तो माधवी मंडप का मार्ग बतला।

माढव्य—इस मार्ग आओ मित्र।

(दोनों चलते हैं और सानुमती पीछे पीछे जाती है।)

माढव्य—जहाँ मणिजटित पटिया बिछी है यही माधवी कुञ्ज है निस्सन्देह यह ऐसी दीखती है मानो मनोहर फूलों की भेंट लिये हमें आदर देती है चलो यहीं बैठें।

[दोनों कुञ्ज में बैठते हैं

सानुमती (आप ही आप)—इस लता की ओट में बैठ कर मैं भी अपनी सखी का चित्र देखूँगी फिर उसके पति का बड़ा अनुराग जाकर उससे कहूँगी। [लता की ओट में बैठती है

दुष्यन्त—हे मित्र ? अब मुझे शकुन्तला के पहले वृत्तान्त की सब सुध आ गई मैंने तुझ से भी तो कहा था परन्तु जिस समय मुझ से उसका अनादर बना तू मेरे पास न था अब तक मैंने भी कभी नाम न लिया सो क्या तू भी मेरी ही भाँति उसको भूल गया था।

माढव्य—नहीं नहीं मैं नहीं भूला था परन्तु जब तुम सब बात कह चुके थे तब यों भी तो कहा था कि यह स्नेह की कहानी हमने मन बहलाने को बनाई है और मुझ गोबरगनेश ने तुम्हारे कहने को अपने भोले भाव से प्रतीति कर लिया था—भवितव्यता प्रबल है।

सानुमती (आप ही आप)—ठीक कहा।

दुष्यन्त (शोक में)—हे सखा मुझे दुःख से छुड़ा।

माढव्य—यह तुम्हें क्या हुआ है सत्पुरुषों को शोक में

अधीर होना योग्य नही देखो पवन कैसे ही चले पर्वत को नहीं डिगा सकती।

दुष्यन्त—हे मित्र! जिस समय मैंने प्यारी का त्याग किया उसकी ऐसी दशा थी कि अब सुध करके मै व्याकुल हुआ जाता हूँ।

दोहा

मैं न लई अबला लगी निज साथिन संग जान।
हटकि कही रहि-रहि यही मुनिसुत पिता समान॥
तब जु दीठि मो तन करी आँसुन भरी रसाल।
दहति निठुर मेरो हियो मनहु विष-भरी भाल॥१४१॥

सानुमती (आप ही आप)—अहा स्वार्थ कैसा प्रबल होता है इसका सन्ताप भी मुझे सुहाता है।

माढव्य—मेरे विचार मे तो यह आता है कि उस भगवती को कोई देवता उठा ले गया।

दुष्यन्त—ऐसी पतिव्रता को छूने की भी किस मे सामर्थ्य हो सकती है मैंने सुना है कि उसकी माँ मेनका अप्सरा है सो उसी की सखियाँ ले गई होगी यह शका मेरे मन में आती है।

सानुमती (आप ही आप) सुध का भूलना अचरज की बात है न कि सुध का आना।

माढव्य—मित्र जो यही बात है तो उसके मिलने मे कुछ बिलम्ब मत जानो।

---

(१४१) जब मैंने कह दिया कि मै तुझे नही ले सकता तब वह अपने साथ वालों के पीछे चलने लगी उनमें से एक ऋषिकुमार ने जिसे वह गुरू के समान मानती थी झुड़क के कहा कि तू हमारे साथ मत चल यहीं रह उस समय जो आँसू भरी हुई दीठि उसने मुझ पर डाली सो अब मेरे कठोर हृदय को ऐसा छेदती है मानों विष की बुझी हुई भाल।

दुष्यन्त—क्यो यह कैसे जाना ?

माढव्य—ऐसे जाना कि माँ-बाप अपनी बेटी को पति वियोग मे बहुत काल दु खी नही देख सकते।

दुष्यन्त—हे मित्र !

दोहा

सपनो हो कै भ्रम कछू कै माया को जाल।
कै फल मेरे पुन्न को प्रगट मिट्यो तत्काल॥
वा सुख के फिर मिलन की आस रही कछु नाहिं।
परे मनोरथ जाय मम अब अथाह के माहिं॥१४२॥

माढव्य—ऐसा मत कहो देखो मुदरी ही इस बात का दृष्टान्त है कि खोई हुई वस्तु फिर मिल सकती है दैव इच्छा सदा बलवान है अकस्मात भी समागम हो जाता है।

दुष्यन्त (मुदरी को देखकर)—हाय यह मुदरी भी अभागी है क्योंकि ऐसे स्थान से गिरी है जहाँ फिर पहुँचना दुर्लभ है।

दोहा

हे मुदरी तेरो सुकृत मेरो ही सौ हीन।
फल सो जान्यो जात है मैं निरनै करि लीन॥
अधिक मनोहर अरुणनख उन अँगुरिन को पाय।
गिरी फेर तू आय जब पुन्य गयो निबटाय॥१४३॥

---

(१४२) शकुन्तला के साथ मेरा मिलाप हुआ सो क्या सपना था अथवा माया का जाल था मेरे पुन्नों का फल था कि उदय हो कर तुरन्त मिट गया। कुछ हो वह सुख फिर न मिलेगा मेरा मनोरथ तो अब अथाह मे पड़ गया।

(१४३) हे अँगूठी ! फलो से जान पड़ता है कि तेरा पुन्य भी मेरा ही सा तुच्छ था क्योंकि तू उन लाल नखों वाली अँगुलियों में पहुँच कर फिर गिर गई।

सानुमती (आप ही आप)—जो किसी और के हाथ पड़ती तौ निःसन्देह इस मुदरी का भाग्य खोटा गिना जाता।

माढव्य—कृपा करके यह तो कहो कि मुदरी उस भगवती की अँगुली तक कैसे पहुँची?

सानुमती (आप ही आप)—मैं भी यही सुना चाहती थी।

दुष्यन्त—सुनो जब मैं तपोबन से अपने नगर को चलने लगा तब प्यारी ने आँखें भर के कहा कि आर्य पुत्र! फिर कब सुध लोगे।

माढव्य—भला फिर।

दुष्यन्त—तब यह मुदरी उसकी अँगुली मे पहना कर मैंने उत्तर दिया कि—

दोहा

अक्षर मेरे नाम कौ दिन दिन गिनियो एक।
यह मुदरी के माहिं तू करि अपने मन टेक॥
निहचे करिके जानियो पिछलो जब होइ।
आवेगी रनवास ते आज लिवावन कोइ॥१४४॥

परन्तु हाय मुझ निर्दई को यह सुध न रही।

सानुमती (आप ही आप)—मिलने की अवधि तौ अच्छी रक्खी थी परन्तु विधाता ने बिगाड़ दी।

माढव्य—फिर वह मुदरी धीवर की काटी हुई रोहू के पेट में कैसे गई?

दुष्यन्त—जिस समय प्यारी ने सचीतीर्थ से आचमन को जल लिया हाथ से गङ्गा जी मे मुदरी गिर पड़ी।

माढव्य—ठीक है।

सानुमती (आप ही आप)—अहा यही बात है कि इस राजर्षि ने अधर्म्म से डर कर तपस्विनी शकुन्तला के साथ ब्याह

होने में सन्देह किया परन्तु मुदरी के देखने से इतना अनुराग इसे क्योंकर हुआ।

दुष्यन्त—इसीलिये मैं इस मुदरी की निन्दा करता हूँ।

माढव्य (आप ही आप)—इसने तो उन्मत्तों का मार्ग लिया है।

दुष्यन्त—

दोहा

यह तोपै कैसी बनी अरी मूदरी हाय।
उन कोमल अंगुरीन तजि पैठी जल मे जाय॥

परन्तु—

नाहिं अचेतन वस्तु को गुन औगुन कौ ज्ञान।
मैं चेतन ह्वै क्यो कियो प्यारी को अपमान॥१४५॥

माढव्य (आप ही आप)—यह तो मुदरी के ध्यान में है मैं क्यों भूखा मरूँ।

दुष्यन्त—हे प्यारी! मैंने तुझे निष्कारण त्यागा अब दयालु होकर मुझ तप्त हृदय को फिर दर्शन दे।

(एक स्त्री चित्र हाथ में लिए आती है)

चतुरिका—महाराज! देखिये महारानी का चित्र यह है।

[चित्र दिखलाती है

माढव्य—हे सखा! यह चित्र बहुत ठीक बना है जो वस्तु जहाँ जैसी चाहिये वहाँ वैसी ही लिखी है मेरी दृष्टि तो उसकी ऊँचाई निचाई से धोखा सा खा जाती है।

सानुमती (आप ही आप)—अहा! धन्य है उस राजर्षि के

---

(१४५) हे मुदरी, तुझे उन अँगुलियों को छोड़ जल में पैठना कैसे बना यह मुदरी तो अचेतन वस्तु है इसे बुरे भले का क्या ज्ञान होगा परन्तु मैंने चेतन होकर क्यों उस स्त्री का अपमान किया।

निपुनता चित्र में सखी मुझे ऐसी दीखती है मानों साक्षात सामने खड़ी है।

दुष्यन्त— दोहा

जो जो बात न चित्र में सक्यो यथारथ लाय।
सो सो मैंने अन्यथा मन तें दई बनाय॥
तऊ रूप लावन्य छबि वाके तन की आय।
झलकति भी रेखान में कछु कछु परति लखाय॥१४६॥

सानुमती (आप ही आप)—यह वचन स्नेह के बड़े पछतावे के योग्य ही हैं और निरभिमान के भी।

माढव्य-यहाँ तो तीन भगवती देखती हैं। और सभी देखने योग्य हैं इनमें भगवती शकुन्तला कौन सी है।

सानुमती (आप ही आप)—इसने उस रूपवती का दर्शन नहीं किया इससे इसकी आँखें निष्फल है।

दुष्यन्त—भला बतला तौ इनमें किसको तू शकुन्तला जानता है।

माढव्य—मेरे जान तौ यही शकुन्तला होगी जिसका केश बन्ध ढीला होकर बालों से फूल गिरते हैं शरीर कुछ थका हुआ सा दीखता है पसीने की बूँदें मुख पर ढलक रही हैं निराली भाँति बाँह फैला रही है और इस सींचे हुए नई कोपलों वाले आम के पास खड़ी है आस पास दोनों सखी होगी।

दुष्यन्त—तु बड़ा प्रवीन है देख इस चित्र मे ये मेरे सात्विक भाव के चिन्ह हैं।

---

(१४६) चितेरों की रीति है कि जो वस्तु चित्र में यथार्थ न आसके उसे दूसरी भाँति लिख देते हैं ऐसा ही मैंने भी इस चित्र में किया है तब भी उस प्यारी के रूप की छबि कुछ कुछ इसकी रेखाओं में झलकती है।

दोहा

लगी पसीजी आँगुरी दीखति रेख मलीन।
आँसू गिरे कपोल पै रंग फीको करि दीन ॥१४७॥

हे चतुरिका, अभी इस विनोदस्थान का चित्र पूरा नहीं बना तू जाकर चित्र बनाने की सामग्री ले आ।

चतुरिका—लो माढव्य जब तक मैं आऊँ तुम चित्रपाटी थामे रहो।

दुष्यन्त–लो तब तक हमीं लिये रहेंगे। (चित्र हाथ में लेता है)

[चतुरिका जाती है

दुष्यन्त—हाय!

चौपाई

जब प्यारी मो सन्मुख आई। करी अधिक मैंने निठुराई॥
चित्र लिखी अब लखि-लखि दाको। फिर फिर आदर देत न थाको॥
बहती नदी उतरि जिमि कोई। मृगतृष्णा कों धावत होई॥
सो गति आनि भई अब मेरी। होति पीर पछतात अनेरी॥१४८॥

माढव्य (आप ही आप)—यह तौ नदी उतर मृगतृष्णा में पड़ा है। (प्रकट) मित्र! अब इसमें क्या लिखना रहा है?

सानुमती (आप ही आप)—मेरे जान तौ अब राजा उन स्थानों को लिखेगा जो मेरी सखी को प्यारे थे।

दुष्यन्त—सुन—

---

(१४७) पसीजती हुई अँगुलियों से किनारे मैले हो गए हैं और आंसू की बूँद कपोल पर टपकी है जिसमें रंग बिगड़ गया है।

(१४८) जब वह मेरे सामने आप आई तब मैंने कठोरता करके उसे न लिया अब उसके चित्र को बार बार आदर देकर थकता नहीं हूं मेरी गति ऐसी है जैसे कोई बहती नदी से उतर कर मृगतृष्णा को दौड़ता है।

दोहा

लिखन काज अब ही रह्यो बहुत मालिनी नीर।
हंसन की जोड़ी सुभग राजति जाके तीर॥
दुहूँ ओर पावन लिखूँ हिमवत चरन पहार।
बैठे हरिन सुहावने जिन पै करत जुगार॥
चाहत हूँ औरहु लिखूँ तरवर एक अनूप।
डारन पै बल्कल बसन परे लगन को धूप॥
नीचे ताही रूख के हरिनी लिखूँ बनाय।
दृग कर सायर सींग तें बायो रही खुजाय॥१४६॥

माढव्य—(आप ही आप) मेरे जान तो इसे चाहिये कि चित्रपाटी को डाढ़ी वाले तपस्वियों से भर दे।

दुष्यन्त—हे मित्र! यहाँ शकुन्तला का एक आभूषन लिखना चाहता था सो मैं भूल गया।

माढव्य—कैसा आभूषन?

सानुमती (आप ही आप)—जैसा बन युवतियों का होता है।

दुष्यन्त—हे मित्र!

दोहा

कानन पै न लिख्यो गयो सिरस फूल सुकुमार।
लटकत आइ कपोल पै जाके केसर बार॥

---

(१४६) लिखने को बातें ये हैं कि मालिनी नदी बनाई जाय उसकी रेती में हंस के जोड़े बैठे हों नदी के दोनों ओर पवित्र हिमालय की तलहटी के पहाड़ हों जिन पर हरिन बैठे जुगाली करते हों और मैं यह भी चाहता हूं कि किसी वृक्ष के नीचे जिसकी डालियों पर छाल के वस्त्र सूखते हों एक हरिणी लिखूँ जो अपनी बाईं आँख काले हरिण के सींग से खुजला रही हो।

(१५०) अभी कानों पर सिरस का फूल लिखना रहा है जिसके

उरहू पै लिखनी रही कमलनाल की माल।
शरद चन्द्र की किरन सम कोमल और रसाल ॥१५०॥

माढव्य—मित्र! यह भगवती अपने मुख को रक्त कमल के पल्लव समान हाथ से छुपाए चकित सी क्यो खड़ी है। (चित्त लगाकर देखता है) अहा मैं जान गया। यह दारी-जाया भौंरा फूलों के रस का चोर भगवती के मुख पर घूमता है।

दुष्यन्त—इस धृष्ट भौंरे को दूर करो।

माढव्य—धृष्टों को दण्ड देने की सामर्थ तुम्ही को है तुम्हीं इसे दूर कर सकोगे।

दुष्यन्त—ठीक कहा है पुष्प लताओं के प्यारे पाहुने तू यहां घूमने क्यों आया है?

दोहा

बैठी भौंरी फूल पै हेरति तेरी गैल।
लगी प्रीति मधु ना पिये प्यासीहू बिन छैल ॥१५१॥

सानुमती (आप ही आप)—यह बरजना बहुत उत्तम रीति से हुआ।

माढव्य-भौंरे की जाति ढीठ होती है हटाये से नही हटती।

दुष्यन्त - अरे भौंरे जो तू मेरी आज्ञा न मानेगा तो सुन—

शिखरनी

प्रिया को है बिम्बाधर मृदुल ज्यों पल्लव नयो।
लियो धीरे धीरे रहसि रस मैंने रत समै॥

केशर कपोल पर लटकने हो और छाती पर कमलनाल की माला लिखनी रही है जो चन्द्रमा की किरन के समान कोमल और सुंदर हो।

(१५१) हे भौंरे यह भौंरी फूल पै बैठी हुई तेरी बाट हेरती है भूखी प्यासी भी तेरे बिना रस नहीं लेती।

(१५२) मेरी प्यारी के होठ ऐसे कोमल हैं जैसी नई कोंपल इसी में

छुएगो जो तू रे भँवर कहुँ याकों तनकहू।
करूँ तोकों बन्दी पकरि प्रफुला के उदर में ॥१५२॥

माढव्य-ऐसे कड़े दंड से क्यो न डरेगा (हँस कर आप ही आप)—यह तौ सिड़ी हो गया है इस के साथ रहने से मैं भी ऐसी बातें कहने लगा। (प्रकट) हे सखा ! यह प्यारी नही है चित्र है।

दुष्यन्त—कैसा चित्र ?

सानुमती—(आप ही आप) इस समय तौ मुझे भी ज्ञान न रहा कि चित्र है फिर इस राजा को क्यो कर रहा होगा।

दुष्यन्त—अरे मित्र तैंने बुरा किया—

दोहा

मैं दरशन सुख लेत हो इकटक चित्त लगाय।
साक्षात ठाडी मनो सन्मुख मेरे आय॥
तौ लौ तैं मोको वृथा सुरति दिवाई मित्र।
अब प्यारी फिर रहि गइ लिखी चित्र की चित्र॥१५३॥

[आँसू डालता है

सानुमती—(आप ही आप) बिरह की गति निराली है जिधर देखता है इसे क्लेश ही दृष्टि आता है।

दुष्यन्त—हे मित्र ! अब मैं यह घड़ी घड़ी का दुःख कैसे सहूँ ?

मैंने मिलाप के समय धीरे धीरे अधरामृत लिया था अरे भौंरे जो तू इन होठों को तनक भी छुएगा तो तुझे कमल के उदर रूपी बन्दीघर में बधुआ बना कर डाल दूँगा।

(१५३) हे मित्र मै तो अपनी प्यारी के दर्शन का सुख उठा रहा था तैने क्यों कह दिया कि यह चित्र है अब तक तो मेरे आगे वह साक्षात् थी अब फिर चित्र लिखी ही रह गई।

दोहा

नित के जागत मिटि गयो वा संग सुपन मिलाप ।
चित्र दरसहू कों लग्यो आंखिन आँसू पाप ॥१५४॥

सानुमती—(आप ही आप) तैंने शकुन्तला के अपमान का दुःख सब धो दिया ।

(चतुरिका आती है ।)

चतुरिका—स्वामी की जय हो मैं रंगों का डिब्बा लिये इधर आती थी ।

दुष्यन्त—तब क्या हुआ ?

चतुरिका—महारानी बसुमती ने तरलिका सहित मार्ग में आकर मेरे हाथ से डिब्बा छीन लिया और कहा कि इसे मैं ही महाराज को चल कर दूँगी ।

माढव्य-अच्छा हुआ कि तू बच आई ।

चतुरिका—रानी का वस्त्र एक काँटे के वृक्ष में अटक गया उसे छुड़ाने में तरलिका लगी तब तक मैं निकल आई ।

दुष्यन्त—हे सखा ! मानगर्विता रानी वसुमती आती है तू इस चित्र को छुपा ले ।

माढव्य—यों क्यों न कहो कि मुझे छुपा ले (यह कहता चित्र को लेकर उठता है)—जब तुम रनवास के काल कूट से छुट जाओ तो मुझे मेघप्रतिच्छन्द भवन से बुला लेना ।

[वेग वेग जाता है

सानुमती—(आप ही आप) दूसरी में आसक्त होकर भी

---

(१५४) नित के जागने से स्वप्न का होना मिट गया इससे प्यारी के साथ स्वप्न-मिलाप नहीं होता और चित्र दर्शन इसलिए दुर्लभ है कि जब चित्र को देखता हूँ आँखों में आँसू भर जाते हैं जिससे दीठि धुंधला जाती है ।

यह पहली प्रीति निबाहता है परन्तु इस रानी में इसका अनुराग थोड़ा ही दीखता है ।

(प्रतीहारी पत्र हाथ में लिये आती है)

प्रतीहारी—महाराज की जय हो ।

दुष्यन्त—हे प्रतीहारी ! तैने महारानी वसुमती को तो मार्ग में नहीं देखा ।

प्रतीहारी—हाँ महाराज मुझे मिली तो थी परन्तु मेरे हाथ में चिट्ठी देख कर उलटी लौट गई ।

दुष्यन्त—रानी समय को पहचानती है मेरे काम में विघ्न डालना नहीं चाहती ।

प्रतीहारी—महाराज ! मंत्री ने यह विनती की है कि आज भंडार में रुपया बहुत आया उसके गिनने से अवकाश न था इसलिये केवल एक ही पुरकाज हुआ है सो इस पत्र में लिख दिया है आप देख लें ।

दुष्यन्त—लाओ चिट्ठी दिखलाओ । [प्रतीहारी चिट्ठी देती है

दुष्यन्त (चिट्ठी बाँचता है)—"समुद्र व्यवहारी धन मित्र नाम सेठ नाव में डूब कर मर गया पुत्र कोई नहीं छोड़ा उसका धन राज भंडार में आना चाहिये" । (शोक से) हाय ! न पुत्रो होना कैसे शोक की बात है । परन्तु जिसके इतना धन था उसकी स्त्री भी कई होगी इसलिये पहले यह पूछ लेना चाहिये कि उन स्त्रियों में कोई गर्भवती है कि नहीं ।

प्रतीहारी—महाराज सुना है कि उसकी एक स्त्री का जो अयुध्या के सेठ की बेटी है अभी गर्भाधान संस्कार हुआ है ।

दुष्यन्त—गर्भ का बालक पिता के धन का अधिकारी होता है जा मन्त्री से ऐसा ही कह दे ।

प्रतीहारी—जो आज्ञा ।   [बाहर जाती है

दुष्यन्त—ठैर तो.

प्रतीहारी (फिर आकर)—महाराज मैं आई ।

दुष्यन्त—इससे क्या है सन्तान हो कि न हो ।

दोहा

केवल पापिन के बिना मम परजा के लोग ।
जा जा प्यारे बन्धु को विधि वस लहैं वियोग ॥
गिने नृपति दुष्यन्त को ताही ताकी ठौर ।
नगर ढँढोरा देहु यह कहो कछू मति और ॥१५५॥

प्रतीहारी—यही ढंढोरा हो जायगा ।

[बाहर जाकर फिर आती है

प्रतीहारी—महाराज की आज्ञा ने नगर में ऐसा आनन्द दिया है जैसे योग्य समय की वर्षा देती है ।

दुष्यन्त (गहरी श्वास भर कर)—जिस कुल में आगे को सन्तान नहीं होती उसकी सम्पति मूल पुरुष के मरे पीछे योंही पराए घर जाती है किसी दिन मेरे पीछे पुरुवंश का वैभव भी ऐसा रह जायगा जैसे अकाल में बोई हुई भूमि ।

प्रतीहारी—ईश्वर ऐसा अमंगल न करे ।

दुष्यन्त—धिक्कार है मुझे कि मैंने प्राप्त हुए सुख को लात मारी ।

सानुमती (आप ही आप)—निश्चय इसने अपनी निन्दा मेरी सखी की सुध करके की है ।

---

(१५५) प्रजा में पापियों के बिना जिस किसी को किसी प्यारे बान्धव का वियोग हो दुष्यन्त को उसी बान्धव की ठौर समझे ।

दुष्यन्त—

दोहा।

बंश प्रतिष्ठा मैं तजी निज पत्नी निष्पाप।
बठयो जाके गरभ में जन्म लेन हित आप॥
समय पाय बोई मनो बसुन्धरा कृषिकार।
त्यागि दई फिर आपही फल आवन की बार॥१५६॥

सानुमती—(आप ही आप) तेरा वश अटूट रहेगा।

चतुरिका—(प्रतीहारी से) हाय ! सेठ के इस वृत्तान्त ने स्वामी की क्या गति कर दी इनका चित्त बहलाने के लिए जा तू माढव्य को मेवप्रतिच्छन्द भवन से लिवा ला।

प्रतीहारी—ठीक कहती है।　　　　　　[बाहर जाती है

दुष्यन्त—धिक्कार है मुझे जिस के पित्र इस सशय मे पड़े होंगे कि—

सोरठा।

कुल हमरे मे होइ याते पाछे कौन जो।
बिधिवत कव्य सॅजोइ नित्त हमे तर्पित करे॥

दोहा

पुत्रहीन मैं देतु जल मिलत उन्हें अब सोइ।
ताहू मे ते बचत जो अश्रु पोंछि कर धोइ॥१५७॥

(शोक में मूर्छित होता है)

---

(१५६) मैंने अपने कुल की प्रतिष्ठा धर्म्मपत्नी जो मुझ से गर्भवती थी ऐसे त्यागी जैसे फल आने के समय कोई किसान अपनी बोई हुई धरती को त्यागता है।

(१५७) दुष्यन्त से पीछे हमारे कुल मे कौन हम को विधि पूर्वक जल तिल पिण्ड देगा अब तो वे मेरे दिये हुए तर्पण जल से उसी को पीते होंगे जो आँसू धोने से बचता है अर्थात् रो रो कर तर्पण लेते होंगे।

चतुरिका—(अचम्भे से देखकर)—महाराज सावधान हो।

सानुमती (आप ही आप)—हाय! इस समय इस की ऐसी दशा है जैसे सन्मुख दीपक होते हुए भी ऊपर अचल आ जाने से किसी को अंधेरा ही दीखता हो अभी इसका दुःख दूर कर देती परन्तु क्या करूँ इंद्र की माता के मुख से शकुन्तला को यों समझाते सुन चुकी हूँ कि यज्ञ भाग के अभिलाषी देवता ऐसा करेंगे जिससे तेरा भरता थोड़े ही काल में तुझ धर्म्म-पत्नी को आनन्द देगा इसलिये जब तक वह शुभ घड़ी आवे तब तक मुझे कुछ न करना चाहिये हाँ इतना तो करूँगी कि अपनी प्यारी सखी को इन वृत्तान्त से धीरज बधाऊं। [उड़ जाती है

(नेपथ्य में)—कोई बचाओ कोई बचाओ।

दुष्यन्त—(सावधान हो कर और कान लगा कर) हैं! यह तो माढव्य का सा रोना है कोई है रे।

(प्रतीहारी आती है)

प्रतीहारी—हे देव! आपत्ति में पड़े हुए अपने मित्र को बचाओ।

दुष्यन्त—किसने अपमान किया है?

प्रतीहारी—बिना दीखते हुए किसी भूत प्रेत ने इसे पकड़कर मेघ प्रतिच्छन्द भवन की मुंडेल पर रख दिया है।

दुष्यन्त—अरे दुष्ट! मेरे मित्र को मत सता क्या मेरे घर मे भी भूत प्रेत आने लगे। सच है—

दोहा

अपनें हू पग को भरम आप न जान्यो जात।
सावधान ह्वै ना चलै नित ठोकर नर खात॥

---

(१५८) जब मनुष्य प्रतिदिन अपने कुकर्मों को जो प्रमादवश होते हो नहीं जान सकता तो क्या जानेगा कि प्रजा मे कौन किस मार्ग चलता है।

तौ फिर कैसे मै सको जान पराई बात।
को को मेरी प्रजा मे का का मारग जात ॥१५८॥

(नेपथ्य में)—सखा चलियो ! चलियो !!

दुष्यन्त (सुनता और दौड़ता हुआ)—डर मत मित्र कुछ भय नहीं है।

(नेपथ्य मे) भय क्यो नहीं है यह तौ मेरे कंठ को पकड़े ईख की नाई ऐंठे डालता है।

दुष्यन्त—(चारों ओर देखता हुआ) हे रे कोई मेरा धनुष लावे।

यवनी–(धनुष लिये आती है) महाराज हस्तावार* सहित धनुष यह है। [दुष्यन्त धनुषबान लेता है

(नेपथ्य में)—

दोहा

प्यासो तेरे कंठ के सद लोहू कौ आज।
तोहि तरफतो मारिहो ज्यो पशु कों मृगराज॥
अब किन है दुष्यन्त जो देन अभय को दान।
तुरतहि अपने धनुष पै तानि चढावत बान ॥१५६॥

दुष्यन्त (क्रोध से)—हैं! यह तौ मुझे चिनोती देता है अरे मरी लोथ के खाने वाले खड़ा रह मैं आया अब तेरी मृत्यु समीप पहुँची। (धनुष चढाकर) प्रतीहारी सीढ़ी दिखला।

प्रतीहारी—गैल यह है महाराज [वेग वेग जाते हैं

---

*हस्तावार उस अस्त्र को कहते हैं जो धनुष की प्रत्यञ्चा की फटकार से बाँह को बचाने के लिये पहुँचे पर धारण किया जाता है।

(१५६) तेरे कठ के लोहू का प्यासा मैं तुझे ऐसे पछाड़ूँगा जैसे तड़फड़ाते पशू को सिंघ मारता है अब बतला दुखियों की रक्षा के लिये धनुष धारण करने वाला दुष्यन्त कहाँ है जो तुझे बचावे ?

दुष्यन्त (चारों ओर देख कर)--हैं ! यहाँ तौ कोई नहीं है।

(नेपथ्य में)—बचाओ कोइ मुझे बचाओ महाराज मैं तौ तुम्हें देखता हूँ तुम्हीं मुझे नहीं देखते इस समय मैं अपने जीने से ऐसा निरास हो रहा हूँ जैसे बिलाव का पकड़ा मूसा।

दुष्यन्त—हे मायाजाल के अभिमानी ! तू मुझे नहीं दीखता तौ क्या है मेरे बान को तो दीखेगा अब देख मैं बान चढ़ाता हूँ जौ—

सोरठा

तो पापी को मारि लेगो द्विजहिं बचाय यो।
जैसे लेत निकारि हंस नीर तें दूध को ॥१६०॥

[धनुष पर बान चढाता है

(माढव्य को छोड़ कर मातलि आता है)

मातलि—

दोहा

दीने तेरे अस्त्र को हरि ने असुर बताय।
तिनही पै किन लेहि तू अपनो धनुष चढ़ाय॥
मित्रन पै छोड़त नहीं सज्जन तीखे बान।
पै डारत नित प्रीति की मृदुल दीठि सुखदान ॥१६१॥

—(अस्त्र उतारता हुआ) आओ इन्द्र के सारथी तुम

(माढव्य आता है)

माढव्य—हैं ! जो मुझे बलि पशु की भाँति मारे डालता था उसका यह आदर करता है।

---

(१६०) यह तुझ दुष्ट को मार कर ब्राह्मण को ऐसे बचा लेगा जैसे पानी में से दूध को हंस निकाल लेता है।

(१६१) हे राजा ! तेरे बानों के लिए तो इन्द्र ने असुर बतला दिये हैं तू उन्हीं पर बान छोड़ मित्रों पर सज्जनों की कृपा दृष्टि चाहिये।

मातलि (मुसका कर)—महाराज ! जिस काम के लिये इन्द्र ने मुझे आप के पास भेजा है सो सुन लो।

दुष्यन्त—कहो मैं सुनता हूँ।

मातलि—कालनेमि के वश में दानवों का ऐसा एक गण प्रबल हुआ है कि उसका जीतना इन्द्र को कठिन हो रहा है।

दुष्यन्त—यह तो मैं आगे ही नारद के मुख से सुन चुका हूँ।

मातलि—　　　　　　　　दोहा

जीत्यो गयो न इन्द्र पै बल सो जो रिपुवंस।
रन अगमानी तुम किए करन ताहि विध्वंस॥
अन्धकार जिमि राति कौ सकत न भानु मिटाय।
पै रजनीपति दरस तें सहजहिं जात विलाय॥१६२॥

अब तुम हथ्यार बाँधो और इन्द्र के रथ पर चढ़कर विजय को चलो।

दुष्यन्त—देवराज ने यह आदर दे कर मेरे ऊपर बड़ी कृपा की परन्तु यह कहो कि माडव्य को तुमने ऐसा क्यों सताया ?

मातलि—किसी कारण आप को मैंने उदास देखा तब रोस दिलाने के लिए यह काम किया था क्योंकि—

दोहा

ईंधन के टारे बिना बढ़ति न पावक लोइ।
फण न उठावत नागहू जो छेड्यो नहिं होइ॥

---

(१६२) जिस शत्रु के वश के जीतने को तुम्हारा सखा इन्द्र असमर्थ है उसके मारने को युद्ध में तुम्हीं मुखिया कहे गए हो जैसे रात के अन्धेरे को मिटाने का बूता सूर्य्य में नहीं होता परन्तु चन्द्रमा मिटा देता है।

(१६३) जब तक ईंधन हिलाया न जाय आग अच्छी तरह नहीं

नर न लेत अभिमान मन विना क्षोभ कछु पाय।
कहियत इन तीनोन के बहुधा यही सुभाय॥१६३॥

दुष्यन्त (माढव्य से हौले) -हे सखा ! देवपति की आज्ञा उल्लंघन योग्य नहीं है इससे तू पिशुन मंत्री को यह समाचार सुना कर मेरी ओर से कह देना कि—

चौपाई

लग्यो और ही काम में जब लग मेरो चाप।
तबलग परजा पालि तू अपनी मति सो आप॥१६४॥

माढव्य—जो आज्ञा। [जाता है

मातलि— महाराज रथ पर चढ़िये।

[दुष्यन्त रथ पर चढता है और सब जाते हैं

छठवाँ अंक समाप्त हुआ।

जलती और जब तक साँप छेड़ा न जाय फन नहीं उठाता ऐसे ही जब तक मनुष्य का अपमान न किया जाय उसे रोस नहीं आता।

(१३४) जब तक मेरा धनुष दूसरे काम में प्रवृत्त है तब तक तुम अपनी बुद्धि से प्रजा की रक्षा करो।

अंक ७

(दुष्यन्त और मातलि रथ पर बैठे हुए आकाश से उतरते हैं।)

दुष्यन्त—हे मातलि ! यह तो सच है कि मैंने इन्द्र की आज्ञा पाली परन्तु फिर मैं अपने को इस बडे आदर के योग्य नहीं जानता हूँ जो देवनायक ने मुझे दिया।

मातलि—(हँसकर) महाराज ! दोनो को यही सकोच है।

दोहा।

तुम हरि कौ एतौ कियो यदपि बडो उपकार।
ताहि न मानत हो कछू देखि इन्द्र सत्कार॥
जानि तुम्हारी वीरता चकित वहू मन माहि।
दियो इतो आदर तऊ गिनत ताहि कछु नाहि॥१६५॥

दुष्यन्त—ऐसा मत कहो इन्द्र ने विदा करते समय मेरा इतना सम्मान किया जितने की आशा न थी क्योंकि देवताओं के देखते मुझे अपनी आधी गद्दी पर बिठाया और—

चौपाई

जाहि मिलन की धरि मन आसा। ठाड़ो हो जयन्तहू पासा॥
सो माला मदार सुमन की। लै उर ते लिपटी चन्दन की॥

---

(१६५)हे राजा तुमने इन्द्रका इतना बडा उपकार किया फिर भी उसके आदर के सामने उस उपकार को तुच्छ ही जानते हो और वह भी तुम्हारी वीरता देख कर अपने दिये हुए सम्मान को कुछ भी नहीं गिनता।

(१६६)जिसके मिलने की आशा करके जयन्त पास खड़ा था सो हरिचन्दन लगी हुई मन्दार की माला इन्द्र ने छाती से उतार बेटे की ओर मुसका कर अपने हाथ से मेरे गले में डाल दी जिससे मेरा बडा सत्कार हुआ।

हसि मुसकाय सुवन की ओरी। कृपा दीठि मो तन हरि मोरी॥
अपने कर मेरे गल डारी। यह आदर दीनो मुहि भारी॥१६६॥

मातलि—हे राजा! देवताओं से आप किस किस सत्कार के योग्य नहीं हो।

दोहा

सुर पुर कौ द्वै ही कियो दानव कटक दूर।
आगे नख नरसिंह के अब तेरे सर क्रूर॥१६७।

दुष्यन्त—हमको इस यश का मिलना भी देवनायक की महिमा का ही फल है क्योंकि—

चौपाई

कारज सिद्ध बड़ो जब होइ। सेवक जन हाथन तें कोई॥
कारन तासु जानि मन लीजे। स्वामि कृपा सन्देह न कीजे॥
अरुण कहाँ इतनो बल पावे। रैनि अँधेरो आय मिटावे॥
देहि ठौर वाको यदि नाहीं। रवि अपने आगे रथ माहीं॥१६८॥

मातलि—ठीक है। (थोड़ी दूर चलकर) हे राजा! इधर दीठि कर के अपने स्वर्ग तक पहुँचे हुए यश का गौरव देखो—

सुर युवतिन अंगराग तें बचे कछू जो रङ्ग।
तिनसों देवा लिखत ये तेरे चरित प्रसङ्ग॥

---

(१६७) स्वर्ग का दुःख दो ही ने मिटाया है पहले नरसिंह जी के नखों ने अब तुम्हारे तीखे बानों ने।

(१६८) जब कोई बड़ा काम आज्ञाकारियों से बन पड़ता है तो स्वामियों की बड़ाई का फल समझा जाता है क्या अरुण की सामर्थ्य थी कि रात्रि के अन्धकार को दूर करता कदाचित् सूर्य्य अपने आगे उसे रथ पर आसन न देता।

(१६९) अपनी स्त्रियों के अंगराग से बचे हुए महावर कस्तूरी चन्दन

आछे सुरतरु पवन पै मधुरे गीत बनाय।
सोचत बैठे सरसपद गहरो ध्यान लगाय ॥१६६॥

दुष्यन्त—हे मातलि दानवों को मारने के उत्साह में पहले दिन इधर से जाते हुए हम ने स्वर्ग मार्ग भली भाँति नहीं देखा था अब तुम कहो इस समय हम पवनों के किस पन्थ में चलते हैं ?

मातलि—　　　　　　　　　दोहा

यह मग हरि पावन कियो दूजो पैंड बढ़ाय।
है याकी वह पवन जो परिवह जाति कहाय ॥
वही पवन नभगंग को नितप्रति रही बहाय।
बाँटि किरन इत उत वही जोतिन देति घुमाय ॥१७०॥

इत्यादि से ये देवता तेरे चरितों को गीतों में रच रच बैठे हुये कल्पवृक्ष के पत्तों पर लिखते हैं।

(१७०) यह मार्ग वावन जी के दूसरे पैंड का पवित्र किया हुआ है और इसमें वह पवन चलती है जो परिवह कहलाती है वही पवन आकाश गंगा को बहाती है और सप्त ऋषि मंडल को घुमाती है। पुराण के मत से आकाश ७ मार्गों में बटा हुआ और प्रत्येक मार्ग में अलग अलग पवन चलती है पहला मार्ग भूलोक है जिसका विस्तार सूरज तक है इस मार्ग में जो पवन चलती है आवह कहलाती है वही अन्तरिक्ष में बहकर बादलों और बिजली और उल्कापात को चलाती है शेष जो ६ मार्ग हैं वह स्वर्गलोक अर्थात् स्वर्ग में हैं इनमें से पहिले में प्रवाह पवन सूरज को चलाती दूसरे में सम्वाह पवन चन्द्रमा को घुमाती है तीसरे में उद्वह पवन नक्षत्रों को चलाती है चौथे में विवाह नाम पवन सातों ग्रहों को चलाती है पाँचवे में परिवह नाम पवन सप्त ऋषियों और स्वर्ग को चलाती है छठे में परवाह पवन ध्रुव के तारे को घुमाती है।

दुष्यन्त—हे मातलि, इसी से मेरा आत्मा बाहर भीतर के इन्द्रियो सहित आनन्द को पहुँचा है। (रथ के पहियों को देख कर) अब तो हम मेघो के मार्ग मे उतर आये।

मातलि—यह आप ने क्यो कर जाना ?

दुष्यन्त—

दोहा

निकसि अरन के बीच ह्वै इत उत चातक जात।
तुरगन हू के अङ्ग पै विज्जु छटा लहरात॥
भीगे पहिया मेह मे रथ ही देत बताय।
नीर भरे बदरान पै अब पहुँचे हम आय॥१७१॥

मातलि—अभी एक क्षण मे आप अपने राज्य में पहुँचते हैं।

दुष्यन्त—(नीचे देख कर) वेग से उतरने मे मनुष्य लोक अचरज सा दीखता है।

चौपाई

दीखति शैल शिखर उठती सी। पहुमि जात नीचे खसती सी॥
रहे रूख जो पात ढके से। लगत कंध तिनके निकसे से॥
सरित लखती जौ मनहु सुखानी। परत दीठि उनमे अब पानी॥
आवत लोकहू ओर हमारी। जिमि ऊपर को दियो उछारी॥१७२॥

---

(१७१) तुम्हारा रथ ही कहे देता है कि हम जल भरे हुए बादलों मे चलते हैं क्योंकि पहिये भीगे हैं इन्द्र के घोड़ों के अग बिजली से चमकते हैं और पहियों के अरों में होकर चातक इधर के उधर उड़ते हैं।

(१७२) पृथ्वी ऐसी जान पड़ती है मानों ऊपर उठते हुये पहाड़ों की चोटी से नीचे का खिसकती जाती है वृक्षों की पींड जो पत्तों में ढकी हुई सी थी खुलती आती हैं नदियों का पतलापन मिटता जाता है और भूमण्डल हमारे निकट आता हुआ ऐसा दीखता है मानों किसी ने ऊपर को उछाल दिया है।

मातलि—आप ने भला देखा। (पृथ्वी को आदर से देखकर) अहा! मनुष्यलोक कैसा रमनीक दिखाई देता है।

दुष्यन्त—मातलि बतलाओ तौ पूरब पच्छिम के समुद्रों के बीच यह कौन सा पहाड़ है जिससे सुनहरी धारा ऐसी निकलती है मानो सन्ध्या के मेघ से अर्गला।

मातलि—महाराज यह तपस्या का क्षेत्र किन्नरो का हेमकूट नाम पर्वत है।

दोहा

सुत मरीचि नाती कुवज देव दनुज के तात।
तपत यहाँ परजापती सहित सुरन की मात॥१७३॥

दुष्यन्त—तौ कल्याण प्राप्त करने के इस अवसर को चूकना न चाहिये आओ उनको प्रणाम करके चलेंगे।

मातलि—यह विचार आप का बहुत उत्तम है।

[दोनों उतरते हैं

दुष्यन्त—(आश्चर्य से)—

दोहा

भयो न इन पहिय्यान तें कछू तनकहू सोर।
धूरि उठति दीखी नहीं मोको काहू ओर॥
जा अपने रथ को रह्यो तू मातलि सन्धानि।
लग्यो न भूतल आय के उतरत पर्‌यो न जानि॥१७४॥

मातलि—हे राजा! आप के और इन्द्र के रथ में इतना ही तौ अन्तर है।

---

(१७३) मरीच के बेटे ब्रह्मा के पोते कश्यप प्रजापति अपनी स्त्री अदित सहित इसी आश्रम में तपस्या करते हैं।

(१७४) रथ के पहियों का कुछ भी आहट न हुआ न कुछ धूल उड़ी न उतरना जान पड़ा।

दुष्यन्त—कश्यप का आश्रम कहाँ है ?

मातलि—(हाथ से दिखला कर)

चौपाई

जहँ वह अचल ठूठ की नाईं। ठाड़ो मुनि मुख करि रवि माईं॥
आधे तन बाँबी चढ़ि आई। सर्प तुचा छाती लपटाई॥
कठ परी अधसूखी वेली। पीड़ित अंग कसी जिमि सेली॥
जटाजूट कंधन पर छाये। जिन मे पछिन नीड़ बनाये॥१७५॥

दुष्यन्त—ऐसे उग्र तप वाले को नमस्कार है।

मातलि (घोड़े की रास खैच कर)—महाराज ! अब हम प्रजापति के उस आश्रम मे आ गये हैं जो अदिती के सींचे हुए मन्दारो से सुशोभित है।

दुष्यन्त—यह तौ स्वर्ग से भी अधिक निर्वृत्ति स्थान है इस समय मैं ऐसा हो रहा हूँ मानो अमृत के कुड मे नहाता हूँ।

मातलि—(रथ ठेरा कर) महाराज ! अब उतर लीजिए।

दुष्यन्त—(रथ से उतर कर) तुम रथ छोड़ कर कैसे चलोगे ?

मातलि—मैंने यत्न कर दिया है रथ आपसे आप यहाँ रहेगा चलिए मैं भी आप के साथ चलता हूँ। (रथ से उतरता है) महाराज ! इस मार्ग आओ महात्मा ऋषियो का तपोवन देखो।

दुष्यन्त—मैं आश्चर्य से देखता हूँ—

चौपाई

करत और मुनि तपि तपि आसा। जा थल माहि लेन हित वासा॥

---

(१७५) कश्यप का आश्रम वही है जहाँ वह तपस्वी ठूँठ की भाति सूरज की ओर दीठि लगाये खडा है जिस के आधे शरीर पै दीमक चढ़ आई है जनेऊ की ठौर साप की खाल पड़ी है गले से सूखी बेल लिपट रही है जटाओं में चिड़ियों ने घोंसले रख लिये हैं।

तहाँ तपत ये तापस लोगू। त्यागि सकल इन्द्रिन के भोगू॥
यहाँ कल्पतरु कुञ्ज अनूपा। साधन अनिल वृत्ति अनुरूपा।
नित कृति कीजैं नीर सुहाए। हेम कमल रज मिलि पियराये॥

दोहा

बैठन काजे ध्यान को मणिसिल बिछी अनेक।
यहाँ अप्सरन निकटहू निबहति सजम टेक॥१७६॥

मातलि—सत्पुरुषो की अभिलासा सदा ऊँची ही रहती है। (इधर उधर फिर कर) कहो बृद्ध शाकल्य इस समय महात्मा कश्यप क्या करते हैं क्या कहा दक्ष की बेटी ने जो पतिव्रत धर्म्म पूछा था वह उनको और ऋषिपत्नियो को सुना रहे हैं।

दुष्यन्त—(कान लगा कर) मुनियो के पास अवसर देख कर जाना चाहिये।

मातलि—(राजा की ओर देखकर) आप इस अशोक वृक्ष की छाया में विश्राम करिये तब तक मैं आप के आने का सदेशा अवसर देखकर इन्द्र के पिता से कह आऊँ।

[बैठता है

दुष्यन्त—जैसा तुम्हे भावे।

मातलि—मै इस काम को करके अभी आता हूँ।

दुष्यन्त—(सगुन देख कर)

---

(१७६) जिस स्थान में बास पाने की और मुनीश्वर अपने तप के द्वारा आकाक्षा रखते हैं जहाँ कल्पवृक्ष के बन में पवन पीकर प्राण रखने का अवसर है जहाँ कनक कमल का पराग मिला हुआ पीला जल सन्ध्या पूजन को मिलता है, जहाँ रत्नशिला पर बैठ कर ध्यान हो सकता है और अप्सराओं के सामने भी इन्द्रियों को वश मे रखना बन पड़ता है उसी स्थान में ये तपस्वी तपते हैं।

दोहा

सिद्ध मनोरथ होन की मोहिं कछू नहि आस।
फिर तू फरकति बाँह क्यो वृथा करन उपहास॥
सन्मुख सुख आयो कहूँ नीद्यो गयो जुहोइ।
पलट दुःख वनिजात है निश्चय जानो सोइ।

(नेपथ्य में)—अरे देख ! चपलता मत कर क्या तू अपनी बान नहीं छोड़ेगा।

दुष्यन्त—(कान लगा कर) हैं ! इस स्थान मे चपलता का क्या काम यह ताड़ना किस को हो रही है। (जिधर बोल सुनाई दिया उधर देखकर आश्चर्य करके) अहा ! यह किसका पराक्रमी बालक है जिसे दो तपस्विनी रोक रही हैं।

दोहा

आधो पीयो मातु थन जा सायक मृगराज।
नाहि घसीटत केश गहि यह शिशु खेलनकाज॥१७८॥

(एक बालक सिंघ के बच्चे को घसीटता हुआ लाता है और दो तपस्विनी उसे रोकती आती हैं)

बालक-अरे सिंघ ! तू अपना मुह खोल मै तेरे दाँत गिनूँगा।

पहिली तपस्विनी—हे अन्यायी ! तू इन पशुओ को क्यो सताता है हम तो इन्हे बाल बच्चो के समान रखती हैं। हाय ! तेरा साहस बढ़ता ही जाता है तेरा नाम ऋषियो ने सर्वदमन रक्खा है सो ठीक ही है।

---

(१७७)यहाँ मनोरथ सिद्ध होने की मुझे कुछ आशा नहीं है फिर हे बाँह ! तू हँसी करने को क्यों फड़कती है सच है जो मनुष्य अपने सामने आए हुए सुख को लात मारता है वह उसके पलटे दुख भोगता है।

(१७८)सिंघिनी के बच्चे को जिसने अपनी माता के थनों से आधा ही दूध पिया है खेलने को घसीटे लाता है।

दुष्यन्त—(आप ही आप) अहा ! क्या कारण है कि मेरा स्नेह इस बालक में ऐसा होता आता है जैसा पुत्र में होता है हो न हो यह हेतु है कि मैं पुत्रहीन हूँ ।

दूसरी तपस्विनी—जो तू बच्चे को छोड न देगा तौ यह सिंघिनी तुझ पर दौड़ेगी ।

बालक-(मुसका कर) ठीक है सिंघिनी का मुझे ऐसा ही डर है ।

[मुँह चिढ़ाता है

दुष्यन्त—

दोहा

दीखत बालक मोहि यह तेजस्वी बलबीर ।
काठ काज जैसे अगिनि ठाड़ो है मतिधीर ।।१७९।।

पहिली तपस्विनी—हे प्यारे बालक ! तू सिंघ के बच्चे को छोड़ दे मैं तुझे और खिलौना दूँगी ।

बालक—कहाँ है ला दे दे । [हाथ पसारता है

दुष्यन्त—इसके तो लक्षण भी चक्रवर्तियों के से है क्योंकि—

दोहा

माँगि खिलौना लैन को जबहिं पसार्यो हाथ ।
जालगुँथी सी आँगुरी सब दीखीं एक साथ ॥
मनहुँ खिलायो कमल कछु प्रात अरुण ने आय ।
नैक न पखुरिन बीच में अन्तर परत लखाय ।।१८०।।

---

(१७९)यह लड़का बडा प्रतापी दीखता है क्योंकि ऐसा खड़ा है जैसे ईंधन चाहती हुई प्रज्वलित अग्नि ।

(१८०)खिलौना लेने को जब इसने हाथ पसारा तौ मिली हुई अँगुलियों से हाथ शोभार्यमान दिखाई दिया मानों सबेरे खिलता हुआ लाल कमल है जिसकी पंखरियाँ अभी अलग नहीं हुई । (यह लच्छन चक्रवर्ती का है ।)

दूसरी तपस्विनी—हे सुव्रता, यह बातो से न मानेगा जा मेरी कुटी मे एक मिट्टी का मोर ऋषिकुमार मारकडेय के खेलने का रक्खा है उसे ले आ।

पहिली तपस्विनी—मैं अभी लिये आती हूँ।

[जाती है

बालक—तब तक मै इसी सिंघ के बच्चे से खेलूँगा।

[यह कह कर तपस्विनी की ओर हँसता है

दुष्यन्त (आप ही आप)—इसके खिलाने को मेरा जी कैसा ललचाता है।

घनाक्षरी

हाँसी बिनहेत माहि दीखति बतीसी कछू, निकसी मनो है पाँति ओछी कलिकान की। बोलन चहत बात टूटी सी निकसि जात, लागति अनूठी मीठी बानी तुतलात की॥ गोद ते न प्यारो और भावे मन कोई ठाँव, दौरि दौर बैठें छोडि भूमि अंगनान की। धन्य-धन्य वे हैं नर मैले जो करत गात, कनिया लगाइ धूरि ऐसे सुवनान की॥१८१॥

दूसरी तपस्विनी—यह मेरी बात तो कान नही धरता। (इधर उधर देखकर) कोई ऋषिकुमार यहाँ है। (दुष्यन्त को देख कर) हे महात्मा! तुम्ही आओ कृपा करके इस बली बालक के हाथ से सिंघ के बच्चे को छुड़ाओ यह इसे खेल मे ऐसा पकड़ रहा है कि छुड़ाना कठिन है।

दुष्यन्त—अच्छा। [लड़के के पास जाकर और हँस कर

---

(१८१) बिना बात हँसना तुतला कर बात कहना दौड़ दौड़ कर गोद में जाना ये बातें बालको की बड़ी प्यारी होती हैं उन माँ बापा को धन्य है जो ऐसे लड़को को गोद में लेकर उनके शरीर की धूल से अपना अंग मैला करते हैं।

चौपाई

आश्रम बासिनकी यह रीती। पशुपालन मे राखत प्रीती॥
सो ऋषि सुत दूषित तै कीनी। उलटी वृत्ति यहाँ क्यों लीनी॥
करत जन्महीं तें ये काजा। जो नहि सोहत मुनिन समाजा॥
तैं यह कियो तपोवन ऐसो। कृष्ण सर्प शिशु चन्दन जैसो॥१८२॥

दूसरी तपस्विनी—हे बडभागी! वह ऋषिकुमार नहीं है।

दुष्यन्त—सत्य है यह तौ इसके आकार सदृश्य काम ही कहे देते हैं परन्तु मैंने तपोवन मे इसका बास देख ऋषिपुत्र जाना था। (जैसी मन मे लालसा है लडके का हाथ अपने हाथ मे ले, कर आप ही आप) अहा!

दोहा

ना जानू का बंश कौ अकुर यहै कुमार।
मो तन एतौ सुख भयो जाहि छुअत एक बार॥
वा बडभागी के हिये कितो न होय उमग।
उपज्यो जाके अग ते ऐसो याको अंग॥१८३॥

तपस्विनी (दोनों की ओर देखकर)—बड़े अचम्भे की बात है।

दुष्यन्त—तुमको क्यो अचभा हुआ?

तपस्विनी—इसलिये हुआ कि इस बालक की और तुम्हारी उन्हार बहुत मिलती है और तुम्हें जाने बिना भी इसने तुम्हारा कहना भी मान लिया।

---

(१८२) हे ऋषि कुमार! तैने आश्रम के विरुद्ध काम कर के अपने पुरुखों के आचरण को जिसमे पशुओं की रक्षा ही मूल है क्यों ऐसे दूषित किया है जैसे काले सर्प का बच्चा चन्दन के वृक्ष को करता है।

(१८३) मै नहीं जानता हूँ कि यह बालक किस वंश का है जिसें एक बार छूने से मेरे शरीर को इतना सुख हुआ फिर जिसके अग मे यह उत्पन्न हुआ है उस वड़भागी को इससे कितना सुख न होता होगा।

दुष्यन्त—(लड़के को खिलाता हुआ) हे तपस्विनी, जो यह ऋषिपुत्र नहीं तौ किस का वंश है ?

तपस्विनी—यह पुरुवंशी है।

दुष्यन्त (आप ही आप) यह हमारे वंश का कैसे हुआ और इस भगवती ने मेरी उन्हार का इसे क्यों कहा हाँ पुरुवंशियों में यह रीति तौ निश्चय है कि—

दोहा

छितिपालन के कारने पहले लेत निवास।
जाय भवन ऐसेन में जँह सब भोग-बिलास॥
पाछे बन मैं बसत हैं लै तरवर की छाँह।
इन्द्री जीतन कौ नियम धरि एकहि मन माँह॥१८४॥

(प्रकट) परन्तु यह स्थान ऐसा नहीं है जहाँ मनुष्य अपने बल से आ सके।

दूसरी तपस्विनी—तुम सच कहते हो इसकी मा मेनका नाम अप्सरा की बेटी है उसी के प्रताप से इस का जन्म देव-पितर कै इस तपोवन मे हुआ है।

दुष्यन्त—(आप ही आप) यह दूसरी बात आशा उपजाने वाली हुई (प्रकट) भला इसकी मा किस राजर्षि की पत्नी है ?

दूसरी तपस्विनी—जिसने अपनी विवाहिता स्त्री को विना अपराध छोड़ दिया उसका नाम कौन लेगा ?

दुष्यन्त—(आप ही आप) यह कथा तौ मुझी पर लगती है अब इस बालक की मा का नाम पूछूँ। (सोच कर) परन्तु पराइ

---

(१८४)पुरुवंशियों की यह रीत है कि तरुण अवस्था मे विलास भी करते हैं और प्रजा को भी पालते हैं फिर बुढ़ापे मे बानप्रस्थ आश्रम ले कर वन में वृक्षों केनीचे कुटी बना कर रहते हैं और केवल इन्द्रियों को वश मे रखने का नियम करते हैं।

स्त्री का वृत्तान्त पूछना अन्याय है।

(तपस्विनी मिट्टी का मोर लिये हुये आती है।)

तपस्विनी—हे सर्वदमन ! यह शकुन्तलावण्य देख।

बालक—(बड़े चाव से देखकर) कहाँ है शकुन्तला मेरी माँ ?

दोनों तपस्विनी—यह मा के प्यारे नाम से धोखा खा गया।

दूसरी तपस्विनी—मुन्ना मैंने तो यह कहा था इस मिट्टी के सुन्दर मोर को देख।

दुष्यन्त—(आप ही आप) क्या इसकी मा का नाम शकुन्तला है ? हुआ करो एक नाम के अनेक मनुष्य होते है। कहीं मुझे दुःख देने को नाम का उच्चारण ही मृगतृष्णा न बनाया हो।

बालक—मुझे यह मोर बहुत अच्छा लगता है।

[खिलौने को लेता है

पहली तपस्विनी—(घबड़ा कर) हाय ! हाय ! इसकी बाँह से रक्षाबन्धन कहाँ गया ?

दुष्यन्त—घबड़ाओ मत जब यह नाहर के बच्चे से खेल रहा था, इसके हाथ से गंडा गिर गया सो यह पड़ा है।

[गंडा उठाने को झुकता है

दोनों तपस्विनी—मत उठाओ हाय ! इसने क्यों उठा लिया ?

(दोनों अचम्भे से छाती पर हाथ रख कर एक दूसरी ओर देखती हैं)

दुष्यन्त—तुमने मुझे इसके उठाने से किस लिये बरजा

दूसरी तपस्विनी—सुनो महाराज ! इस गंडे का नाम अपराजित है जिस समय इस बालक का जातकर्म्म हुआ महात्मा मरीचि के पुत्र कश्यप ने यह दिया था इसमें यह गुन है कि कदाचित् धरती पर गिर पड़े तो इस बालक को और इसके मा बाप को छोड़ और कोई न उठा सके।

दुष्यन्त—और जो कोई उठा ले तो।

पहिली तपस्विनी—तो यह तुरत साँप बनकर उसे डसता है।

दुष्यन्त—तुमने ऐसा होते कभी देखा।

दोनो तपस्विनी—अनेक बार।

दुष्यन्त—(प्रसन्न होकर आप ही आप)—अब मेरा मनोरथ पूरा हुआ मैं क्यों आनन्द न मनाऊ।

[लड़के को गोद मे लेता है

दूसरी तपस्विनी—आओ सुव्रता यह सुख का समाचार चल के शकुन्तला को सुनावें वह बहुत दिन से वियोग के कठिन नेम कर रही है।

[दोनों जाती हैं

बालक—मुझे छोड़ो मैं अपनी मा के पास आऊंगा।

दुष्यन्त—हे पुत्र ! तू मेरे संग चल कर अपनी माँ को सुख दीजो।

बालक—मेरा पिता तो दुष्यन्त है तुम नहीं हो।

दुष्यन्त (मुसका कर)—यह विवाद भी मुझे प्रतीत कराता है।

(एक बेनी धारण किये शकुन्तला आती है)

शकुन्तला—(आप ही आप) मैं सुन तो चुकी हूं कि सर्व-दमन के गंडे ने अवसर पा कर भी रूप न पलटा परंतु अपने भाग्य का मुझे कुछ भरोसा नहीं हाँ इतनी आशा है कि कदाचित् सानुमती का कहना सच्चा हो गया हो।

दुष्यन्त—(शकुन्तला को देखकर) अहा ! यही प्यारी शकुन्तला है।

दोहा

नियम करत बीते दिवस दूबर अंग लखात।
साँस एक बेनी धरे बसन धूसरे गात ॥१८५॥

(१८५) बहुत दिन व्रत साधते बीते हैं इससे शरीर दुबला हो गया है

दोहा

यदपि शब्द जय कंठ में आँसुन रोक्यो आय।
पै न कछू संका रही मैं लीनी जय पाय॥
दरसन तो मुख कौ भयो सुमुखी मोहि रसाल।
विना लखोटा हू लगे अधर ओठ अति लाल॥१८७॥

बालक—हे मा! यह पुरुप कौन है?

शकुन्तला—बेटा अपने भाग्य से पूँछ।

(दुष्यन्त—शकुन्तला के पैरो में गिरता है)

दोहा।

मन ते प्यारी दूर अब डारि बिलग अपमान।
वा छिन मेरे हिय रह्यो प्रबल कछू अज्ञान॥
तामस वस गति होति यह बहुतन की सुखवार।
फेंकन जिमि अहि जानि के अध दियो गलहार॥१८८॥

शकुन्तला—उठो प्राणपति! उठो उन दिनो मेरे पूर्व जन्म के पाप उदय हुए थे जिन्होंने सुकर्म्मों का फल मेट मेरे दयावान पति को मुझसे निस्नेह कर दिया (राजा उठता है) अब यह कहो कि मुझ दुखिया की सुध तुम्हे कैसे आई?

---

(१८७) हे सुन्दरी! मैंने जान लिया तू जय शब्द कहा चाहती थी सो आँसुओं ने रोक लिया परन्तु मेरी जय होने में अब कुछ संदेह नहीं क्योंकि अंगराग रहित और लाल होठों सहित तेरा मुख मैंने देख लिया।

(१८८) हे प्यारी! अब तू अपमान के पछताए को भूल जा जिस समय मैंने तुझे स्वीकार न किया मेरा चित्त भ्रम में था और ऐसा बहुधा देखा गया है मनुष्य अज्ञानवश हो कर सामने आये हुए सुख का अनादर कर देते हैं जैसे अन्धे के गले में हार पहनाया जाय और वह उसे साँप जान कर फेंक दे।

दुष्यन्त—जब संताप का काँटा मेरे कलेजे से निकल जायगा तब सब कहूँगा।

दोहा

देखी अनदेखी करी मैं वा दिन भ्रम पाय।
तेरी आँसू बूंद जो परी अधर पै आय॥
सो पछतायो आज मै पदमिनि लेहुँ मिटाय।
या आँसू को पोछि जो रह्यो पलक तो छाय॥१८९॥

[आसू पोंछता है

शकुन्तला—(राजा की अँगुली में अगूठी देखकर) क्या यह वही मुदरी है?

दुष्यन्त—हाँ, इसी के मिलते मुझे तेरी सुध आई।

शकुन्तला—इसने बुरा किया कि जब मैं अपने स्वामी को प्रतीति कराती थी यह दुर्लभ हो गई।

दुष्यन्त—हे प्यारी! अब तू इसे फिर पहन जैसे ऋतु के आने पर लता फिर फूल धारन करती है।

शकुन्तला—मुझे इसका विश्वास नहीं रहा तुम्ही पहने रहो।

(मातलि आता है)

मातलि—महाराज! धन्य है यह दिन कि आप ने फिर धर्म-पत्नी पाई और पुत्र का सुख देखा।

दुष्यन्त—हाँ, आज मेरा मनोरथ सफल हुआ। हे मातलि! तुम यह तो कहो कि इस वृत्तान्त को इन्द्र ने जान लिया था कि नहीं।

---

(१८९) उस दिन होठ पर गिरती हुई तेरी आँसू की बूंद मैंने भ्रम के वश देखी अनदेखी की थी इस पछताए को आज मै तेरे पलक पर छाए हुए आँसू को पोछ कर मिटाऊँगा।

मातलि—(हँस कर) देवताओं से क्या छुपता है ? अब आओ महात्मा कश्यप आप को दर्शन देंगे।

दुष्यन्त—प्यारी तू पुत्र का हाथ थाम ले मैं तुझे आगे ले कर महात्मा का दर्शन करना चाहता हूँ।

शकुन्तला—तुम्हारे संग बड़ों के सन्मुख जाते मुझे सकुच लगती है।

दुष्यन्त—ऐसे शुभ अवसर पर ऐसा ही करना उचित है—आओ। [सब घूमते हैं

(आसन पर बैठे हुए कश्यप और अदिती दीखते हैं)

कश्यप—(राजा की ओर देखकर) हे दक्षसुता !

दोहा

है यह तेरे पुत्र की रन अगमानी भूप।
नाम जासु दुष्यन्त है कीरति जासु अनूप॥
जाके धनुष प्रताप तें लहिके अब विश्राम।
सोभा ही को रहि गयो इन्द्र वज्र अभिराम ॥१९०॥

अदिती—बड़ाई तो इसके रूप ही से दीखती है।

मातलि—(दुष्यन्त से) हे राजा ! ये देवताओं के माता पिता आप की ओर प्यार की दृष्टि से ऐसे देख रहे हैं जैसे कोई अपने पुत्र को देखता है आओ इनके निकट चलो।

दुष्यन्त—हे मातलि ! क्या कश्यप और अदिती यही हैं !

चौपाई

इनहिं दुहुन को ऋषि मुनि धावें। द्वादस रवि के जनक बतावें॥
हैं मरीचि सुत दक्षसुता ये। नाती अरु नातिन ब्रह्मा के॥

---

(१९०) तेरे पुत्र की सेना का अग्रगामी मृत्युलोक का राजा दुष्यन्त यही है इसी के धनुष के प्रताप से इन्द्र का वज्र अब शोभा मात्र को रह गया है।

सुरनायक इनही ने जायो। जो तिरलोकीनाथ कहायो॥
बिधि ते परे पुरुष जो कोऊ। इनकी कोख अवतर्‌यो सोऊ॥१६१॥

मातलि—हाँ ये ही हैं।

दुष्यन्त (प्रणाम कर)—महात्माओ! तुम्हारे पुत्र का आज्ञाकारी दुष्यन्त प्रणाम करता है।

कश्यप—बेटा तू चिरंजीव हो कर पृथ्वी का पालन करे।

अदिती—बेटा तू रण मे अजित हो।

शकुन्तला—मैं भी आप के चरणों मे बालक समेत बंदना करती हूँ।

कश्यप—हे पुत्री—

दोहा।

भरता तेरो इन्द्र सम सुत जयन्त उपमान।
और कहा बर देहुँ तुहि तू हो सची समान॥१६२॥

अदिती—हे पुत्री! तू सदा पति की प्यारी हो और यह बालक दीर्घायु होकर दोनो कुल का दीपक हो। आओ बैठो।

[सब प्रजापति के सामने बैठते हैं

कश्यप—(एक एक की ओर देखकर दुष्यन्त से)

दोहा

नारि सती सुत शुद्ध कुल तुम राजन सिरमौर।
श्रद्धा बिधि अरु वित्त सम मिले धन्य इक ठौर॥१६३॥

---

(१६१) क्या द्वादस आदित्यो के माता पिता ये ही हैं इन्हीं से त्रिभुवन नाथ इन्द्र का जन्म हुआ है इन्हीं की कोख में विष्णु ने बावन औतार होकर जन्म लिया था ये ही मारीच के पुत्र और दक्ष की पुत्री अर्थात् ब्रह्मा के नाती नातिन हैं।

(१६२) तेरा पति इन्द्र के सामान और बेटा जयन्त के समान और तू सची के सामान हो इससे अधिक और क्या आशीर्वाद तुझे दूँ।

(१६३) तेरी स्त्री पतिव्रता और बेटा दोनो कुल का शुद्ध और तू

दुष्यन्त—हे महर्षि ! आप का अनुग्रह बड़ा अपूर्व है।

दोहा

फूल लगे तब होत फल घन आवे तब मोह।
कारन कारज गति यही तामे नहिं सन्देह॥
पै अद्भुत तुम्हरी कृपा देखी मैने आज।
वर तुमने पाछे दियो पहले पुजयो काज॥१६४॥

मातलि—प्रजापतियो की कृपा का यही प्रभाव है।

दुष्यन्त—हे भगवन ! आप की इस दासी का विवाह मेरे साथ गन्धर्व रीति से हुआ था फिर कुछ काल बीते मायके के लोग इसे मेरे पास लाये उस समय मेरी ऐसी सुध भूली कि इसे पहचान न सका और इसका त्याग करके न आप के सगोत्री कन्व का अपराधी बना पीछे अँगूठी देख कर मुझे सुध आई कि कन्व की बेटी से मेरा व्याह हुआ था यह वृत्तान्त अचरज सा दीखता है।

चौपाई

लखि सनमुख हाथी जिमि कोई। कहे कि यह हाथी नहि होई॥

आप बडा राजा तुम तीनों का ऐसा जोग हुआ है जैसे श्रद्धा वित्त और विधि का।

(१६४)पहले फूल आता है तब फल लगता है पहले बादल आता है तब मेह बरसता है परन्तु तुम्हारी कृपा निराली है कि मुझे तुम्हारा आशीर्वाद पीछे मिला काम सिद्ध पहले ही हो गया।

(१६५) जब शकुन्तला मेरे सामने आई मैने कहा कि इससे मेरा व्याह कभी नहीं हुआ फिर जब वह मेरे पास से चली तब मुझे कुछ कुछ शका हुई कि कदाचित इससे व्याह हुआ होगा निदान जब अगूठी देखी तब व्याह का निश्चय हुआ जैसे सामने हाथी देख कर कोई कहे कि यह हाथी नहीं है फिर जब चला जाय तब कहे कि हाथी होगा अथवा न होगा और जब उसकी खोज देखे तब निश्चय कर जाने कि हाथी ही था।

निकसि जाय तब शङ्का लावे। हाँ कबहूँ कबहूँ ना गावे ॥
खोज देखि फिर हाथी जाने। निश्चय भूल आपनी माने ॥
याही विधि गति मो मन केरी। उलटि पलटि लीनी बहु फेरी ॥

कश्यप—हे बेटा! जो कुछ अपराध हुआ उसका सोच अपने मन से दूर कर क्योंकि तुझे उस समय भ्रम ने घेर लिया था। अब सुन—

दुष्यन्त—मैं एकाग्र चित्त होकर सुनता हूँ आप कहे।

कश्यप—जब अप्सरातीर्थ पर जा कर मेनका ने शकुन्तला को व्याकुल देखा तो उसे लेकर अदिती के पास आई मैंने उसी समय ध्यान शक्ति से जान लिया कि तैंने अपनी पवित्रता को केवल दुर्वासा के शाप वश छोड़ा है और इस शाप की अवधि मुंदरी के दर्शन तक रहेगी।

दुष्यन्त—(आप ही आप) तो मै धर्मपत्नी परित्याग के अपवाद से बच गया।

शकुन्तला—(आप ही आप) धन्य है कि स्वामी ने मुझे जान बूझ नही त्यागा परन्तु मुझे सुध नही है कि स्वामी ने मुझे जान बूझ नही त्यागा परन्तु मुझे सुध नही है कि शाप कब हुआ अथवा उस समय विरह के सोच मे बेसुध हूँगी क्योंकि मेरी सखियों ने मुझे जता दिया था कि अपने भरता को अंगूठी दिखा देना।

कश्यप—हे पुत्री! अब तू कृतार्थ हुई अपने पति का अपराध मत समझ।

दोहा

निठुर भयो पति भूलि सुधि तू त्यागी वश शाप।
दई तोहि अब भ्रम मिटे सब विधि प्रभुता आप ॥

---

(१६६) तेरे पति ने शाप के वश सुध भूल कर तुझे छोड़ा था अब उसका भ्रम मिट गया और तुझे सब भाँति वैभव मिला जैसे मैल पड़

छाया परति न मुकर में मैल कछू जो होइ।
पै दीखत है सहज ही जब डार्‌यो वह धोइ ॥१९६॥

दुष्यन्त—महात्मा! यह मेरे वंश की प्रतिष्ठा है।

[बालक का हाथ पकड़ता है

कश्यप—यह भी जान लो कि यह बालक चक्रवर्ती होगा।

दोहा

सुखगामी रथ पर चढ्यौ उतरि महोदधि पार।
जीतेगो यह बीर नर तीन दीप अरु चार।
किये पसू बस सब यहाँ सर्वदमन भौ नाम।
प्रजा भरण करि होगयो फेरि।भरत अभिराम ॥१९७॥

दुष्यन्त—जिसके आपने सत्कार किये हैं उससे हम को किस किस बड़ाइ की आशा नहीं।

अदिती—हे भगवन! शकुन्तला के मनोरथ सिद्ध हुए इस लिये इसके पिता को भी यह वृत्तान्त सुनाना चाहिये और इसकी माता मेनका तो मेरे ही पास है वह सब जानती है।

शकुन्तला—(आप ही आप) इस भगवती ने तो मेरे ही मन की कही।

कश्यप—अपने तप के बल से कन्व मुनि सब वृत्तान्त जानते होंगे।

दुष्यन्त—इसी से मुनि ने मुझ पर क्रोध न किया।

जाने से दरपन में प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता परन्तु मैल धो डालने से फिर पड़ने लगता है।

(१९७) यह तुम्हारा वीर पुत्र सातों द्वीपों को जीतेगा और जैसे इस आश्रम में दुष्ट पशुओं को दबा कर इसने सर्वदमन नाम पाया है आगे प्रजा का पोषण कर के भरत कहलावेगा।

कश्यप—तौ भी हमें उचित है कि कन्व को यह मङ्गल समाचार सुनावें। कोई है रे यहाँ।

(एक चेला आता है)

चेला—महात्मा ! क्या आज्ञा है ?

कश्यप—हे गालव ! तू अभी आकाश मार्ग होकर कन्व के पास जा और मेरी ओर से यह मङ्गल समाचार सुना दे कि दुर्वासा का शाप मिट जाने पर आज दुष्यन्त ने पुत्रवती शकुन्तला पहचान कर अंगीकार कर ली।

चेला—जो आज्ञा। [जाता है

कश्यप—अब पुत्र तुम भी स्त्री बालक समेत इन्द्र के रथ पर चढ़ आनन्द से अपनी राजधानी को सिधारो।

दुष्यन्त—जो आज्ञा।

कश्यप—और सुन लो—

चौपाई

इन्द्र मेह बहुता बरसावे। याते तो परजा सुख पावे॥
करि करि यज्ञ तुम बहुतेरे। तुष्ट करो मन देवन केरे।
या बिधि साधि परस्पर काजू। सौ जुग करत रहो तुम राजू॥
दुहू लोक बासी सुख पावे। तुम दोहन के मिलि जस गावें॥१५८॥

दुष्यन्त—हे महात्मा, जहाँ तक हो सकेगा मैं इस सुख के निमित्त सब उपाय करूँगा।

कश्यप—कहो पुत्र अब तुम्हें और क्या आशीर्वाद दूँ।

दुष्यन्त—जो आप ने कृपा की है इससे अधिक आशीर्वाद

(१५८)इन्द्र बहुत सा मेह बरसावे जिससे तुम्हारी प्रजा को सुख हो और तुम बहुत सा यज्ञ करो जिससे स्वर्ग के देवता तृप्त हों इस भाँति एक दूसरे का उपकार करते हुये दोनों सौ युग तक राज करते रहो जिससे दोनों लोक के बसने वाले सुखी रहें और तुम दोनों के जस गाते रहें।

क्या होगा और कदाचित् आप पूछते ही हैं तौ भरत का यह वचन पूरा होने दीजिये—

शिखरनी

प्रजा काजैं राजा नित सुकृति पै उद्यत रहैं।
बड़े वेदज्ञानी हित सहित पूजे सरसुती ॥
उमास्वामी शम्भू जगतपति नीललोहित प्रभू।
छुटावैं मोहू को विपति अति आवागमन सो ॥१६६॥

कश्यप—तथास्तु।

[सब बाहर जाते हैं

❀ समाप्तम् ❀

---

(१६६) राजा लोग अपनी प्रजा के सुख निमित्त अच्छे काम करें वेदपाठी ब्राह्मण सरस्वती की सेवा करते रहैं और नीललोहित अग महादेव जी मुझे आव.गमन की पीडा से छुड़ावैं।